

**A contract is an agreement creating and defining obligation between the parties**

– **Salmond**

भारतीय संविदा अधिनियम का उद्देश्य— प्रत्येक अधिनियम का उद्देश्य उसकी प्रस्तावना में दिया होता है। भारतीय संविदा अधिनियम 1872 की प्रस्तावना इस प्रकार है—

‘चूँकि संविदाओं से सम्बन्धित विधि के कुछ भागों को परिभाषित व संशोधित किया जाना आवश्यक है, अतः एतद्वारा निम्न उद्देश्य अधिनियमित किया जाता है।’

जैसा कि अधिनियम की प्रस्तावना से सिद्ध होता है भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 का मुख्य उद्देश्य, इस समय संविदा के जो नियम चलन में थे उनको अच्छी प्रकार से शब्दों में बांधना तथा जहाँ आवश्यक हो वहाँ संशोधन करना और यह अधिनियम अपने उद्देश्य में सफल भी हुआ है क्योंकि अब असमंजस की रिस्ति समाप्त हो गयी है तथा संविदा विधि के प्रशासन में एकरूपता आ गयी है।

**अधिनियम का विषय—क्षेत्र तथा प्रयोज्यता—** यह अधिनियम जम्मू तथा काश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है। यह अधिनियम 1 सितंबर, सन् 1872 को लागू हुआ। यह अधिनियम भूतलक्षी नहीं है इसलिए 1 सितंबर, सन् 1872 से पूर्व जो संविदाएँ की गई थीं उन पर इस अधिनियम का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

**अधिनियम का स्वरूप—** 1872 के भारतीय संविदा अधिनियम में कुल 11 अध्याय तथा 226 धाराएँ थीं जिनमें से अध्याय 6 (धारा 76 से 122 तक) में वस्तु विक्रय सम्बन्धी नियम अध्याय 11 (धारा 239 से 266 तक) में साझीदारी के सम्बन्ध में नियम थे— इन दोनों ही के लिए क्रमशः सन् 1930 तथा 1932 में अलग—अलग अधिनियम पारित किये जा चुके हैं और अब भारतीय संविदा अधिनियम का जो स्वरूप है इसे दो मुख्य भागों में रखा जा सकता है— प्रारम्भ की 75 धाराओं में संविदाओं के सामान्य सिद्धान्त बताये गये हैं तथा धारा 124 से धारा 238 तक विशेष प्रकार की संविदाओं का वर्णन किया गया है जिसमें हानि—रक्षा तथा प्रतिभूति के संविदाएँ (धारा 124 से 147 तक) उपनिधान एवं निक्षेप के संविदाएँ (धारा 148 से 181 तक) तथा एजन्सी के संविदाएँ (धारा 182 से 238) तक सम्मिलित हैं।

**संविदा की परिभाषा—** साधारण बोलचाल की भाषा में संविदा का अर्थ है—“दो व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध।” विधि में संविदा का अर्थ है— ऐसे करार जो पारस्परिक अधिकारों एवं आभारों का जन्म देते हैं। दूसरे शब्दों में जब एक करार द्वारा एक व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त हो कि वह दूसरे व्यक्ति को कुछ करने अथवा न करने को बाध्य करे सके तो इसे संविदा कहते हैं।

(1) **ऐन्सन के अनुसार—** ‘संविदा दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य हुआ विधि द्वारा प्रवर्तनीय करार है जिससे कई व्यक्तियों द्वारा एक या कई व्यक्तियों के प्रतिकृत्यों या सहनशीलता के अधिकार अर्जित होते हैं।’

(2) **सेविन्सी के अनुसार—** ‘संविदा दो विचारों—करार तथा आधार के मिश्रण से बनता है।’

(3) **सर फ्रेडरिक पॉलॉक के अनुसार—** ‘प्रत्येक करार या वचन जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय हो, संविदा कहलाता है।’ यदि कोई करार किसी व्यक्ति को यह अधिकार देता है कि वह किसी दूसरे व्यक्ति को कोई कार्य करने या न करने के लिए विवश कर सकता है तो ऐसा करार संविदा कहलायेगा। संविदा से एक ओर जहाँ एक व्यक्ति को अधिकार प्राप्त होता है वहाँ दूसरी ओर एक अन्य व्यक्ति के लिए उस अधिकार से सम्बन्धित कर्तव्य—पालन का बन्धन हो जाता है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (एच) के अनुसार “संविदा विधि द्वारा प्रवर्तनीय करार है।” (An agreement enforceable by law is a contract, Sec. 2 h )

करार शब्द की परिभाषा भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (ड) में दी गयी है जिसके अनुसार “एक दूसरे के लिए प्रतिफल होने वाली प्रत्येक प्रतिज्ञा और प्रत्येक प्रतिज्ञा—संवर्ग करार है।

### वैध (मान्य) संविदा के आवश्यक तत्व

वैध संविदा के आवश्यक तत्व— वैध संविदा के आवश्यक तत्वों का वर्णन भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 10 में किया गया है। इसके अनुसार, “सभी करार, यदि वे संविदा करने में सक्षम पक्षकारों की स्वतन्त्र सम्मति से विधिपूर्ण प्रतिफल के लिए और विधिपूर्ण उद्देश्य से किए जाते हैं और एतद् द्वारा अभिव्यक्तरूपेण शून्य घोषित नहीं किए गए हैं, संविदा है।”

उपर्युक्त धारा से स्पष्ट होता है कि वैध संविदा के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं—

- (1) एक करार होना चाहिए अर्थात् प्रस्ताव और स्वीकृति होनी चाहिए।
- (2) पक्षकार संविदा करने में सक्षम होने चाहिए।
- (3) करार पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति से किया गया होना चाहिए।
- (4) करार विधिपूर्ण प्रतिफल के लिए और विधिपूर्ण उद्देश्य से किया जाना चाहिए।
- (5) करार अभिव्यक्तरूपेण शून्य घोषित नहीं किया गया हो।
- (6) करार को तत्समय भारत में प्रवृत्त विशिष्ट विधि की अपेक्षाओं का पूरा करना चाहिए। करार करते समय यदि प्रवृत्त विधि द्वारा अपेक्षित हो तो करार, लिखित, प्रमाणित व पंजीकृत होना चाहिए।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

(1) करार का होना— वैध संविदा के लिए करार का होना अति आवश्यक है। करार के बिना संविदा की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। दूसरे शब्दों में करार, संविदा की आधारशिला है।

संविदा शब्द की परिभाषा संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2 (h) में इस प्रकार दी गयी है—

“विधि द्वारा प्रवर्तनीय करार संविदा कहलाता है”( An agreement enforceable by law is a contract)

इस परिभाषा के अनुसार संविदा के 2 तत्व हुए— पहला, करार तथा दूसरा, करार विधि द्वारा प्रवर्तनीय होना चाहिए।

करार की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि करार एक वचन है या ऐसे वचन है जो एक—दूसरे के लिए प्रतिफल होते हैं। ‘वचन’ शब्द की परिभाषा धारा 2 (b) में दी गयी है: जब किसी प्रस्थापना का प्रतिग्रहण कर लिया जाता है तो वह वचन बन जाता है। इन परिभाषाओं का निष्कर्ष यह है कि करार प्रतिग्रहीत प्रस्ताव को कहते हैं और वचन के माने हैं प्रतिग्रहीत प्रस्थापना। तदनुसार प्रत्येक करार एक ओर से प्रस्थापना है और दूसरी ओर से उसका प्रतिग्रहण। करार दो या अधिक व्यक्तियों के बीच होना चाहिए तथा वह करार विधि द्वारा प्रवर्तनीय होना चाहिए।

(2) पक्षकार— वैध संविदा के आवश्यक तत्वों में से एक तत्व यह है कि पक्षकार संविदा करने में सक्षम होने चाहिए। ‘सक्षम पक्षकार’ की परिभाषा संविदा अधिनियम 1872 की धारा 11 में दी गयी है जो इस प्रकार है—

“प्रत्येक व्यक्ति जो कि उस विधि के अनुसार जिसके कि वह अध्यधीन है, वयस्कता की आयु का है, और जो कि स्वरथ चित्त का है, और किसी विधि द्वारा जिसके कि वह अध्यधीन है, संविदा करने से अनहींकृत नहीं है, संविदा करने में सक्षम है।”

इस प्रकार संविदा के पक्षकार वयस्क, स्वरथ चित्त के होने चाहिए तथा उस विधि द्वारा जिसके कि वह अध्यधीन है संविदा करने से अनहींकृत नहीं होने चाहिए। कुछ व्यक्ति राजनैतिक स्थिति, मानसिक विकृति तथा कृत्रिम व्यक्तित्व के कारण संविदा करने में अक्षम माने जाते हैं।

(3) स्वतन्त्र सम्मति— वैध संविदा का एक आवश्यक तत्व पक्षकारों की स्वतन्त्र सम्मति है। स्वतन्त्र सम्मति की परिभाषा भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 14 में दी गयी है जिसके अनुसार—

जबकि सम्मति—

- (1) धारा 15 में यथा परिभाषित उत्पीड़न से, या
- (2) धारा 16 में यथा परिभाषित असम्यक् असर से, या
- (3) धारा 17 में यथा परिभाषित कपट से, या
- (4) धारा 18 में यथा परिभाषित मिथ्या व्यपदेशन से, या

(5) धाराओं 20, 21 और 22 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए भूल से न करायी गयी हो तो उसके बारे में कहा जाता है कि वह स्वतन्त्र है। जबकि सम्मति ऐसे उत्पीड़न, असम्यक् असर, कपट मिथ्या व्यपदेशन या भूल के अस्तित्व से अन्यथा दी गयी होती तब उसके बारे में यह कहा जाता है कि वह ऐसे करायी गयी है। यदि किसी संविदा में कपट, सम्यक् असर आदि की उपस्थिति है तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सम्मति नहीं दी गयी है। सम्मति तो है परन्तु वह स्वतन्त्र रूप से नहीं दी गयी है। कपट, असम्यक् असर के अधीन दी गयी सम्मति का परिणाम यह होता है कि वह दूसरे पक्षकार के विकल्प पर शून्यकरणीय होती है। (S.19,19 A)

(4) विधिपूर्ण प्रतिफल तथा उद्देश्य— वैध संविदा गठित करने के लिए एक आवश्यक तत्व यह है कि उस संविदा का प्रतिफल एवं उद्देश्य विधिपूर्ण होना चाहिए।

धारा 10 में वर्णित ‘प्रतिफल’ व उद्देश्य शब्द एक—दूसरे से समानार्थी नहीं हैं बल्कि भिन्न हैं।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 23 में विधि—विरुद्ध प्रतिफल एवं उद्देश्य का उपबन्ध किया गया है। निम्नलिखित प्रतिफल एवं उद्देश्य विधि—विरुद्ध होते हैं—

- (a) यदि प्रतिफल तथा उद्देश्य विधि द्वारा निषिद्ध है तो यह विधि—विरुद्ध होगा तथा करार शून्य होगा।
- (b) यदि प्रतिफल तथा उद्देश्य ऐसे रूप का है कि यदि वह अनुज्ञात किया गया तो वह किसी विधि के उपबन्धों को निष्फल कर देगा, तो वह विधि—विरुद्ध होगा तथा करार शून्य होगा।
- (c) यदि प्रतिफल तथा उद्देश्य कपटपूर्ण है। जैसे— अ अपने मालिक की भूमि को उसकी जानकारी के बिना ब को सप्रतिफल पट्टे पर उठा देता है। यहाँ अ तथा ब के बीच करार शून्य है क्योंकि अ द्वारा कपट किया गया है।
- (d) यदि करार में दूसरे के शरीर या सम्पत्ति को क्षति अन्तर्ग्रस्त है तो करार शून्य है।
- (e) यदि न्यायालय प्रतिफल तथा उद्देश्य को अनैतिक तथा लोकनीति के विरुद्ध समझाता है तो करार शून्य है।

(5) करार का शून्य न होना— करार को प्रत्यक्ष रूप से शून्य घोषित नहीं किया गया होना चाहिए। भारतीय संविदा अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित करार शून्य घोषित किए गए हैं—

- (a) धारा 20 के अनुसार जहाँ कि किसी करार के दोनों पक्षकार करार के लिए सारभूत किसी तथ्य की बात के बारे में भूल के अधीन हैं, वहा करार शून्य है।
- (b) धारा 23 के अनुसार प्रत्येक करार, जिसका उद्देश्य या प्रतिफल विधि विरुद्ध है, शून्य है।
- (c) धारा 24 के अनुसार यदि किसी करार का प्रतिफल तथा उद्देश्य भागतः विधि विरुद्ध हो तो करार शून्य है।
- (d) धारा 25 के अनुसार प्रतिफल के बिना करार, जब तक कि वह लिखित तथा रजिस्ट्रीकृत न हो, या की गयी किसी बात के लिए प्रतिकर देने की प्रतिज्ञा न हो, या मर्यादा विधि द्वारा वर्णित किसी ऋण को चुकाने की प्रतिज्ञा न हो, शून्य होता है।
- (e) धारा 26 के अनुसार विवाह के अवरोधार्थ करार शून्य होता है।
- (f) धारा 27 के अनुसार व्यापार के अवरोधार्थ करार शून्य होता है।
- (g) धारा 28 के अनुसार वध कार्यवाहियों के अवरोधार्थ करार शून्य होता है।
- (h) धारा 29 के अनुसार वे करार जिसका अर्थ निश्चित नहीं है शून्य है।
- (i) धारा 30 के अनुसार बाजी लगाने की अनुरीति के करार शून्य है।
- (j) धारा 36 के अनुसार असंभव घटनाओं पर आधारित करार शून्य है।
- (k) धारा 56 के अनुसार असम्भव कार्य करने के करार शून्य है।

**(6) विधि की आकांक्षाएँ पूर्ण की जानी चाहिए—** जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि सरकार को किसी विशिष्ट विधि की आकांक्षाओं को पूर्ण करना चाहिए। कुछ करार जो लेखबद्ध व पजीकृत होने चाहिए निम्नलिखित हैं—

- (1) समय अराधित कर्ज को चुकाने का करार,
- (2) अचल सम्पत्ति को बेचने का करार।
- (3) विवादों को निपटाने हेतु वंचनिर्णय को सौंपने का करार।

**'प्रस्ताव' व 'प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण'** में अन्तर।

आंग विधि का 'प्रस्ताव' शब्द भारतीय संविदा अधिनियम के 'प्रस्थापना' शब्द का समानार्थी है। प्रस्ताव की परिभाषा भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (क) में दी गयी है जिसके अनुसार 'जब कोई व्यक्ति किसी बात को करने या करने से प्रतिविरत रहने की अपनी रजामन्दी ऐसे कार्य या प्रतिविरति के प्रति किसी दूसरे की अनुमति अभिप्राप्त करने की दृष्टि से उस दूसरे को संज्ञात करता है, उसके बारे में कहा जाता है कि वह प्रस्ताव करता है। अर्थात् प्रस्ताव दो पक्षों के बीच विधिक सम्बन्ध स्थापित करके संविदा का निर्माण करता है।

**प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण—** प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण कोई विधिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करता है, क्योंकि आमन्त्रण के लिए किया गया कथन किसी निश्चित बात के लिए इस दृष्टि से नहीं किया जाता है कि उस पर किसी दूसरे की अनुमति प्राप्त की जाय। ऐसे आमन्त्रण के उत्तर में जब किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा कोई कथन किया जाता है तब वह कथन एक निश्चित बात का सूचक होता है और प्रस्ताव बन जाता है।

#### **उदाहरण**

जब कोई व्यक्ति, कम्पनी या प्रतिष्ठान से किसी कार्य के लिए निविदा (टेंडर) आमन्त्रित करता है तब यह प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण होता है। उसके उत्तर में जब कोई व्यक्ति कम्पनी या प्रतिष्ठान को निविदा भेजता है तब यह प्रस्ताव बन जाता है वस्तुओं की मूल्य-सूची या विभिन्न वस्तुओं का सूचीपत्र, कोई प्रस्ताव न होकर केवल प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण है। उस मूल्य-सूची के अनुसार कोई व्यक्ति या ग्राहक कोई माल खरीदने के लिए दुकान पर जाता है और तदनुसार माल की माँग करता है तब वह माँग प्रस्ताव हो जाता है। इसी प्रकार विज्ञापन, जैसे नीलामी द्वारा विक्रय का विज्ञापन आदि प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण होते हैं। कुछ विज्ञापनों को उनकी विशिष्ट प्रकृति के कारण प्रस्ताव भी माना जा सकता है, जैसा कि कार्लिल बनाम कार्बोलिक स्पोक बाल क. के प्रसिद्ध अंग्रेजी वाद में धारित किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन के बाद, प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण में निम्नलिखित अन्तर किया जा सकता है—

- (1) 'प्रस्ताव' किसी निश्चित बात को करने या न करने के लिया किया जाता है जबकि प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण में कोई बात करने या न करने की कोई निश्चित बात नहीं कही जाती है।
- (2) 'प्रस्ताव' किसी निश्चित व्यक्ति का किया जाता है जबकि 'प्रस्ताव' के लिए आमन्त्रण किसी निश्चित व्यक्ति को नहीं किया जाता है।
- (3) 'प्रस्ताव' किसी अन्य व्यक्ति को इस दृष्टि से किया जाता है कि उस पर उस व्यक्ति की अनुमति अभिप्राप्त की जाय जबकि 'प्रस्ताव' के लिए 'आमन्त्रण' किसी ऐसी दृष्टि से नहीं किया जाता है।
- (4) 'प्रस्ताव' दो पक्षों के बीच विधिक सम्बन्ध स्थापित करता है। जबकि 'प्रस्ताव' के लिए 'आमन्त्रण' ऐसा कोई विधिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करता है।
- (5) 'प्रस्ताव' जब दूसरे पक्ष द्वारा स्वीकार किया जाता है तब वह प्रतिज्ञा बन जाता है जबकि 'प्रस्ताव' के लिए 'आमन्त्रण' जब दूसरे पक्ष द्वारा स्वीकार किया जाता है तब वह प्रस्ताव बन जाता है।
- (6) 'प्रस्ताव' की संसूचना उस व्यक्ति को होनी चाहिए जो उसके अनुसार कार्य करता है। ऐसी संसूचना के अभाव में विधिक सम्बन्ध स्थापित नहीं होता है। जबकि 'प्रस्ताव' के लिए 'आमन्त्रण' में ऐसी किसी संसूचना की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि उसमें कोई विधिक सम्बन्ध स्थापित नहीं होता है।

निम्नलिखित 'प्रस्ताव' नहीं है बल्कि 'प्रस्ताव' के लिए 'आमन्त्रण' है

- (1) टेंडर के लिए विज्ञापन

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

- (2) विक्रय अथवा नीलामी द्वारा विक्रय के लिए विज्ञापन
- (3) किसी जाँच के उत्तर में निम्नतम मूल्यों की दर
- (4) विक्रय के लिए माल का सूची-पत्र  
निम्नलिखित प्रस्ताव हैं—

  - (1) एक निश्चित समय पर माल भेजने का टेंडर
  - (2) कर्ज के लिए निवेदन
  - (3) नीलामी द्वारा विक्रय में बोली

हार्बी बनाम फैसी (1893) में प्रतिवादी फैसी ने अपने मकान 'हाइटएकर की कीमत, वादी हार्बी के तार द्वारा पूछने पर कि "क्या आप अपना हाइटएकर नामक मकान बेचेगे? तार द्वारा उसका कम-से-कम दाम बताइए।" उसको तार भेजकर इस प्रकार बतायी थी कि हाइटएकर की कम-से-कम कीमत 900 पौण्ड है।" हार्बी ने दुबारा तार भेजकर यह उत्तर दिया "हाइटएकर 900 पौण्ड पर खरीदने को तैयार है। कृपया अपना स्वत्व-विलेख भेजिए।" फैसी ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। न्यायालय ने धारित किया कि इन तारों से कोई संविदा नहीं बनती है, हार्बी का दूसरा तार मात्र एक प्रस्ताव था जिसको फैसी ने स्वीकार नहीं किया। स्वीकार करना या न करना फैसी पर निर्भर था इसलिए कोई संविदा नहीं बनी और वाद खारिज किया गया।

### परिभाषाएँ

- (1) **प्रस्थापना**— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (क) में प्रस्थापना की निम्नलिखित परिभाषा दी गयी है—

"जबकि एक व्यक्ति किसी बात के करने से प्रतिविरत रहने की अपनी रजामन्दी ऐसे कार्य या प्रतिविरति के प्रति किसी दूसरे की अनुमति अभिप्राप्त करने की दृष्टि से उस दूसरे संज्ञात करता है तब उसके बारे में कहा जाता है कि वह प्रस्थापना करता है।"

भारतीय संविदा अधिनियम का शब्द 'प्रस्थापना' आंगल-विधि के प्रस्ताव का पर्यायवाची शब्द है। यह किसी करार अथवा संविदा का प्रथम चरण है। प्रस्थापना ही प्रतिग्रहण (अर्थात् स्वीकृति) को जन्म देती है और प्रस्थापना और प्रतिग्रहण मिलकर करार का गठन करते हैं। यह धारणा नहीं की जानी चाहिए कि एक व्यक्ति के आशय का प्रत्येक वर्णन प्रस्थापना के समान होगा। ऐन्सन कहता है कि प्रस्ताव आशय के कथन से भिन्न होता है। क्योंकि प्रस्ताव जिस पक्षकार के प्रति निर्भित किया जाता है उस पक्षकार के प्रति बाध्य होने की उत्सुकता (दिली खाहिश) को प्रकट करता है।

हार्वे बनाम फैसी (*Harvey vs Facey*) में H ने एक तार F के पास भेजा—“ क्या आप हाइटएकर बेचेगे? उसका न्यूनतम मूल्य तार द्वारा सूचित करें।” f ने तार द्वारा उत्तर दिया—“हाइटएकर का न्यूनतम मूल्य 900 पौण्ड है।” H ने तार द्वारा उत्तर दिया—“ आप द्वारा माँगे गये 900 पौण्ड में हाइटएकर खरीदने के लिए हम सहमत हैं। कृपया अपना स्वत्व विलेख भजें।” इस अन्तिम तार का कोई उत्तर नहीं भेजा गया। इस मामले में यह धारित किया गया कि इसमें कोई संविदा न थी। क्योंकि H ने पहले प्रश्न में दो प्रश्न किए थे— (1) क्या आप बेचेगे? और (2) इसका निम्नतम मूल्य क्या है? और अपने उत्तर में F ने नहीं कहा कि मैं 900 पौण्ड में बेचूँगा। उसने केवल दूसरे प्रश्न का उत्तर दिया था अतएव H का तार वास्तव में 900 पौण्ड देने का प्रस्ताव था और वह प्रस्ताव F के लिए था कि वह इसे स्वीकार करे या नहीं।

**मैकफर्सन बनाम अपन्ना (1951) S.C. 184** के वाद में वादी ने प्रतिवादी के अभिकर्ता द्वारा 6000 रुपये मूल्य पर एक सम्पत्ति को उसके मालिक, के पास भेज दिया और उत्तर में उसे एक समुद्री तार मिला—“10000 रुपये से कम में न स्वीकार कीजिए।” इसकी सूचना वादी को दी गयी। वादी ने दस हजार रुपये का यह मूल्य स्वीकार किया और अभिकर्ता को एक पत्र लिखकर इनकी पुष्टि कर दी। किन्तु मालिक ने सम्पत्ति अन्यत्र बेच दी। वादी ने यथोलिखित पालन के लिए वाद दायर कर दिया और इस प्रश्न पर कि क्या निम्नतम मूल्य के रूप में कथन प्रति-प्रस्ताव के समान था और क्या इसमें वर्णित मूल्य का प्रतिग्रहण (स्वीकृति) एक निश्चायक संविदा थी? उच्चतम न्यायालय ने धारित किया कि निम्नतम मूल्य जिस पर विक्रेता बेचेगा, के केवल एक कथन में जाँच करने वाले व्यक्ति के विषय में मूल्य पर बेचने की अन्तर्निहित संविदा नहीं है। प्रतिवादी का समुद्री तार जो अपने अभिकर्ता को निम्नतम मूल्य से सूचित करने के लिए किया गया था, विपरीत प्रस्ताव के रूप में नहीं माना जा सकता जो विक्रेता द्वारा इसकी स्वीकृति होने पर एक अन्तिम संविदा उत्पन्न करने में समर्थ हो।

(2) **स्वीकृति (प्रतिग्रहण)**— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (ख) के अनुसार 'जबकि वह व्यक्ति जिससे प्रस्ताव किया जाता है, उसके प्रति अपनी अनुमति प्रदान करता है, तब कहा जाता है कि प्रस्ताव स्वीकृत हो गया है।'

क, ख को 5000 रुपये में अपना मकान बेचने का प्रस्ताव करता है तथा ख उस मकान को 5000 रुपये में खरीदने की स्वीकृति प्रदान करता है तो इसे

ऐन्सन कहते हैं— प्रस्ताव के लिए स्वीकृति की स्थिति वही है जो कि बारूद की गाड़ी के लिए जलती हुई दियासलाई की। उससे एक ऐसी बात पैदा होती है जिसे वापस नहीं किया जा सकता परन्तु रखी गयी बारूद तब तक पड़ी रहेगी जब तक वह भीरी हुई रहेगी या गाड़ी रखने वाला व्यक्ति उसमें दियासलाई लगाने के पहले उसे हटा सकेगा। अतः स्वीकृति के अभाव में प्रस्ताव समाप्त हो सकता है या स्वीकृत के पहले वापस भी लिया जा सकता है।"

उसी प्रकार जब तक स्वीकृति प्राप्त न हो जाय, तब तक प्रस्ताव द्वारा किसी विधिक अधिकार का उद्भव नहीं होता और वह स्वीकृति के अभाव में या तो समाप्त हो सकता है या स्वीकृति के पहले वापस लिया जा सकता है। स्वीकृति द्वारा कोई प्रस्ताव प्रतिज्ञा बन जाता है। ज्योंही कोई प्रस्ताव कर लिया जाता है, वह प्रस्ताव करने वाले व्यक्ति पर एक दायित्व कायम करता है, और फिर वह प्रस्ताव वापस नहीं ले सकता।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

स्वीकृति के निम्नलिखित विशेष लक्षण हैं—

- (1) स्वीकृति के लिए आवश्यक है प्रस्ताव के स्वीकारकर्ता को प्रभाव का पता होना चाहिए।
- (2) स्वीकृति निरपेक्ष, बिना शर्त तथा अमर्यादित होनी चाहिए। यदि स्वीकृति प्रस्ताव की शर्तों के अनुसार नहीं की जाती और उसमें और कछ जोड़ दिया गया है तो यह केवल प्रति-प्रस्ताव (काउन्टर ऑफर) हो जायेगा।
- (3) प्रस्ताव की स्वीकृति प्रस्ताव के निश्चित समय के भीतर की जानी चाहिए, परन्तु यदि प्रस्ताव में समय निश्चित नहीं किया गया हो तो, स्वीकृति एक उचित समय के भीतर की जानी चाहिए।
- (4) स्वीकृति की संसूचना प्रस्थापक या उसके अधिकृत एजेण्ट के पास शब्दों द्वारा अथवा आचरण द्वारा निश्चित या उचित समय में भेजी जानी चाहिए। केवल मानसिक स्वीकृति अथवा प्रस्ताव को स्वीकार करने की इच्छा मात्र ही कोई वैध स्वीकृति नहीं मानी जाती।
- (5) प्रस्ताव की स्वीकृति प्रस्तावक द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार होनी चाहिए।
- (6) स्वीकृति प्रस्ताव के अपखण्डन या समाप्त होने से पूर्व होनी चाहिए, बाद में नहीं प्रस्ताव के खण्डन के बाद की गयी स्वीकृति, प्रस्तावक पर बन्धनकारी नहीं होगी।
- (7) प्रस्ताव की स्वीकृति हमेशा शब्दों द्वारा होना आवश्यक नहीं है, यह आचरण द्वारा भी हो सकती है (Sec 9)

### उदाहरण

क रेल द्वारा आगरा से दिल्ली की यात्रा करता है तो उसे रेलवे द्वारा निर्धारित किराया देना होगा। चूँकि यहाँ के रेलवे द्वारा निर्धारित किराए के प्रस्ताव की स्वीकृति अपने आचरण से रेल में यात्रा करके देता है अतः सविदा वैध होगी क्योंकि यहाँ प्रस्ताव को स्वीकृति आचरण द्वारा की गयी है।

- (8) स्वीकृति के लिए यह आवश्यक है कि स्वीकृतकर्ता को प्रस्ताव की स्वीकृति देने से पूर्व प्रस्ताव की समस्त शर्तों से अवगत होना चाहिए। इस सम्बन्ध में कार्लिल बनाम कार्बॉलिक स्माक बॉल कम्पनी (1893) के मामले का हवाला देना आवश्यक है। कार्बॉलिक स्मोक बॉल कम्पनी ने यह प्रस्ताव किया कि जो कोई भी उनके 'स्मोक बॉल' के प्रयोग के बाद इन्प्लूएन्जा से बीमार पड़े उसे कम्पनी 100 पौण्ड देगी। मिसेज कार्लिल ने 'स्मोक बॉल' का प्रयोग किया। लेकिन फिर भी उन्हें इन्प्लूएन्जा हुआ। जब उन्होंने कम्पनी से इनाम की रकम की मँग की तो कम्पनी की ओर से यह कहा गया कि कम्पनी को प्रस्ताव की स्वीकृति प्राप्त नहीं थी। इसीलिए कोई बन्धनकारी संविदा नहीं थी। निर्धारित किया गया कि मिसेज कार्लिल द्वारा "स्मोक बॉल" का प्रयोग व्यवहार द्वारा कम्पनी के प्रस्ताव की स्वीकृति थी और स्वीकृति का कोई औपचारिक नोटिस जरुरी नहीं था। क्योंकि प्रस्ताव का स्वीकृता प्रस्ताव की समस्त शर्तों से अवगत था।
- (9) स्वीकृति का अपखण्डन (Revocation) स्वीकृति का प्रस्तावक को ज्ञान होने से पूर्व कभी भी किया जा सकता है।
- (10) जब स्वीकृति की संसूचना पूर्ण हो जाती है तो प्रस्ताव अखण्डनीय हो जाता है तथा वह प्रतिज्ञा का रूप धारण कर लेता है।

(3) वचनदाता / प्रतिज्ञाकर्ता— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(ग) के अनुसार प्रस्थापना/प्रस्ताव करने वाले व्यक्ति को प्रतिज्ञाकर्ता कहते हैं।

### उदाहरण

क, ख को अपना मकान 5,000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है और यदि ख इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है तो यहाँ के प्रतिज्ञाकर्ता कहलायेगा।

(4) प्रतिज्ञा— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(ख) के अनुसार प्रस्थापना प्रतिग्रहण के बाद प्रतिज्ञा बन जाती है। प्रतिज्ञा का अर्थ दोनों ओर से स्वीकृति का स्पष्टीकरण मात्र नहीं है, बल्कि यह भी है कि शब्दों कार्य अथवा आचरण द्वारा इस बात का आश्वासन दिया जाय कि भविष्य में कोई बात घटित होगी या घटित न होगी, और आश्वासन पूर्ण किये जाने का कर्तव्य भी होगा। तत्काल निष्पादित किया गया करार प्रतिज्ञा नहीं होता।

आंग विधि के अनुसार कोई प्रस्ताव या प्रतिग्रहण किसी कार्य या प्रतिज्ञा द्वारा किया जा सकता है, यहाँ प्रतिज्ञा के केवल एकपक्षीय कार्य अभिप्रेत है परन्तु भारतीय संविदा अधिनियम में प्रतिज्ञा शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ में लिया जाता है, जिससे आशय होता है प्रतिग्रहीत प्रस्थापना अर्थात् स्वीकृत प्रस्तावना साधारणतया हम यह कह सकते हैं कि यदि ख, क के लिए कार्य करे तो क ख को एक हजार रुपये देने का वचन करता है। अधिनियम के अनुसार के केवल प्रस्ताव कर रहा है, जो ख द्वारा प्रतिग्रहीत किये जाने पर प्रतिज्ञा हो जाता है।

(5) प्रतिज्ञाग्रहीता— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(ग) के अनुसार जो व्यक्ति प्रस्ताव स्वीकार करता है उसे प्रतिज्ञाग्रहीता कहते हैं।

(6) प्रतिफल— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(घ) के अनुसार जबकि प्रतिज्ञाकर्ता की इच्छा पर प्रतिज्ञाग्रहीता या किस अन्य व्यक्ति ने कोई बात की है या करने से प्रतिविरत रहा है, या करता है या करने से प्रतिविरत रहता है, या करने की या करने से प्रतिविरत रहने की प्रतिज्ञा करता है, तब ऐसा कार्य, या प्रतिविरति या प्रतिज्ञा उस प्रतिज्ञा के लिए प्रतिफल कहलाती है।

उपर्युक्त परिभाषा को हम विवेचना की सुविधा के लिए निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(i) जब प्रतिज्ञाकर्ता की इच्छा पर— प्रतिफल की परिभाषा का सर्वप्रथम आवश्यक तत्व यह है कि वह कृत्य, जो प्रतिफल निर्मित करता हो, ऐसा होना चाहिए जिसे प्रतिज्ञाकर्ता की इच्छा अथवा प्रार्थना पर किया गया हो।

### उदाहरण

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

अब से अपने पुत्र की देखभाल का अनुरोध करता है तथा इसके बदले मे उसे 2,000 रुपये देने की प्रतिज्ञा करता है। ब देखभाल करता है। संविदा पूर्णतः वैध है क्योंकि ब ने अ की इच्छा पर उसके पुत्र की देखभाल की थी और अ की प्रतिज्ञा का प्रतिफल ब द्वारा अ के अनुरोध पर की गयी सेवाएँ हैं।

(ii) प्रतिज्ञाग्रहीता या कोई अन्य व्यक्ति— प्रतिफल की परिभाषा का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व यह है प्रतिफल वचनग्रहीता या अन्य किसी व्यक्ति द्वारा दिया जा सकता है।

(iii) प्रतिफल कृत्य या प्रतिविरति में हो सकता है— प्रतिफल किसी कार्य के करने या उससे प्रतिविरत रहने से हो सकता है।

### उदाहरण

क, ख से यह प्रतिज्ञा करता है कि वह ख पर वाद नहीं चलायेगा यदि वह व्याज की दर 6 से 9 प्रतिशत कर दे। यह एक वैध संविदा है क्योंकि की प्रतिविरति ख की प्रतिज्ञा के प्रतिफल के रूप में है।

(iv) करता है या करने से प्रतिविरति रहने की प्रतिज्ञा करता है— प्रतिफल का आवश्यक तत्व यह है कि जब प्रतिज्ञाकर्ता की इच्छा पर कोई व्यक्ति कार्य करता है या करने से प्रतिविरति रहता है तो वह वैध प्रतिफल होगा।

(7) अनुबन्ध (करार)— अनुबन्ध करार की परिभाषा संविदा अधिनियम की धारा 2(ड) में दी गयी है। इसके अनुसार, “एक दूसरे के लिए प्रतिफल होने वाली प्रत्येक प्रतिज्ञा और प्रत्येक प्रतिज्ञा संवेदन ‘करार’” है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रतिज्ञा करार होती है।

संविदा विधि द्वारा प्रवर्तनीय करार है। परन्तु जो करार विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं ह उसे शून्य करार कहते हैं। फिर ऐसा करार जो एक या दूसरे पक्षकार के विकल्प पर विधि द्वारा प्रवृत्त किये जाने योग्य होता है शून्यकरणीय संविदा होता है। इस प्रकार प्रत्येक संविदा एक करार होती है, परन्तु प्रत्येक करार संविदा नहीं होती है।

किसी भी करार में विधि द्वारा प्रवर्तनीय होने के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—  
 (1) करार के लिए आवश्यक है कि वह पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति से किया गया हो। सहमति, मिथ्या,—व्यपदेशन, दवाब या अनुचित प्रभाव द्वारा नहीं प्राप्त की गयी।  
 (2) करार ऐसे पक्षों द्वारा किया जाना चाहिए जो कि संविदा करने के लिए सक्षम हो।  
 (3) करार का उद्देश्य तथा प्रतिफल वैध होना चाहिए।  
 (4) करार ऐसा नहीं होना चाहिए जो कि अभिव्यक्तरूपेण शून्य घोषित किया गया हो।

उदाहरण—क और ख विवाह न करने के लिए करार करते हैं। ऐसा करार विधि द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसा करार ऐसा करार शून्य है।

(5) करार लिखित तथा यदि ऐसा अपेक्षित है तो रजिस्टर्ड होना चाहिए।

सहमत होने के लिए करार विधि के अन्तर्गत प्रवर्तनीय नहीं होता है। इस धारा के अन्तर्गत वैध संविदा का गठन उसी स्थिति में होता है जबकि विधिपूर्ण उद्देश्य के लिए विधिपूर्ण प्रतिफल के बदले कोई करार किया जाता है।

(8) पारस्परिक प्रतिज्ञाएँ— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(च) के अनुसार, “प्रतिज्ञाएँ, जो एक—दूसरे के लिए प्रतिफल या प्रतिफल का भाग है, पारस्परिक प्रतिज्ञाएँ कहलाती हैं।

इस प्रकार पारस्परिक प्रतिज्ञाएँ वे प्रतिज्ञाएँ होती हैं जिसमें एक पक्षकार की एक कार्य करने की प्रतिज्ञा दूसरे पक्षकार की कार्य करने की प्रतिज्ञा का प्रतिफल होती है।

उदाहरण—अ और ब विवाह की प्रतिज्ञा करते हैं। यहाँ अ की प्रतिज्ञा ब प्रतिज्ञा का प्रतिफल है तथा ब की प्रतिज्ञा अ की प्रतिफल है।

(9) शून्य करार— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(छ) के अनुसार, “विधि द्वारा अप्रवर्तनीय करार शून्य कहलाता है अर्थात् ऐसा करार जो विधि द्वारा प्रवर्तन में न लाया जा सके, शून्य करार कहलाता है।

उदाहरण अ और ब विवाह न करने का करार करते हैं तो यह करार शून्य होगा क्योंकि यह विधि द्वारा प्रवर्तन में नहीं लाया जा सकता है।

(10) संविदा— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(ज) के अनुसार विधि द्वारा प्रवर्तनोय करार संविदा है। ऐसा करार जो अनुसार संविदा दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य हुआ विधि द्वारा प्रवर्तनीय करार है जिससे एक या अधिक के प्रति कहर्त्यों तथा सहनशीलता के अधिकार अर्जित होते हैं। अतः संविदा एक ऐसा करार है जिसका उद्देश्य आभार की उत्पत्ति करना है अर्थात् विधि द्वारा प्रवर्तनीय कर्तव्य।

संविदा का गठन उस समय होता है जबकि एक पक्षकार प्रस्ताव स्वीकार करता है जो उसे अन्य पक्षकार द्वारा किसी कार्य को करने के लिए या उस कार्य से अलग रहने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। हम जानते हैं कि एक प्रस्ताव जब प्रतिग्रहीत (स्वीकृत) होता है तो वह प्रतिज्ञा बन जाता है और

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

यह संविदा को एक विधिक कर्तव्य बनाता है जो उसके द्वारा प्रतिज्ञापालन करने के लिए दूसरे पक्षकार पर और उसके पालन को प्रतिग्रहीत / स्वीकृत करने के लिए दूसरे पक्षकार पर सृजित होता है।

संविदा के दो तत्व होते हैं— (1) करार तथा (2) कर्तव्य। करार ऐसा हो सकता है जो किसी विधिक कर्तव्य को उत्पन्न नहीं करता।

**उदाहरण—** यदि अ रात के खाने के लिए व का निमन्त्रण स्वीकार करता है तो अ का नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने वादे का पालन करें। यदि अ, ब के यहाँ रात के खाने के लिए नहीं आता है तो ब का अ के विरुद्ध कोई विधिक उपचार प्राप्त नहीं है। यह एक करार या सहमति का मामला है जो कोई विधिक उपचार पाप्त नहीं है। यह एक करार या सहमति का मामला है जो कोइ विधिक कर्तव्य उत्पन्न नहीं करता। इसके विपरीत बिना किसी करार के एक कर्तव्य हो सकता है। ऐसे करार सिर्फ सामाजिक या नैतिक दायित्वों को जन्म देते हैं।

**(11) शून्यकरणीय संविदा—** भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(झ) के अनुसार कोई करार, जो कि उसके पक्षकारों में से एक या अधिक के विकल्प पर प्रवर्तनीय है, किन्तु दूसरे पक्षकार या पक्षकारों के विकल्प पर प्रवर्तनीय नहीं है, शून्यकरणीय संविदा है।

शून्यकरणीय संविदा से अभिप्राय ऐसी संविदा से है जो कि पक्षकारों में से एक या अधिक के विकल्प पर प्रवर्तनीय है। जब किसी करार के प्रति सहमति, दबाव या मिथ्या रूप से प्राप्त की गयी तो उस व्यक्ति के विकल्प, जिसकी सहमति इस प्रकार प्राप्त की गयी है, पर यह करार शून्यकरणीय संविदा होगी तथा उस पक्षकार को जिसकी सहमति इस प्रकार प्राप्त की गयी है यह अधिकार होगा कि वह करार से उत्पन्न होने वाले आभार का पालन करने से इन्कार कर दे। शून्यकरणीय संविदा उस समय तक पूर्णतः वैध होती है जब तक कि इसको अमानित करने का हकदार व्यक्ति अपने विकल्प के प्रयोग द्वारा करार का अमानन नहीं करता। परन्तु जब व्यक्ति करार का अमानन इस प्रकार करता है तो करार शून्य हो जाता है।

**उदाहरण—क, ख को धमकी देता है कि वह अपना मकान 10,000 रुपए में उसे नहीं बेचेगा तो उसे जान से मान देगा। ख राजी हो जाता है। परन्तु ख इस करार का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है। क्योंकि सहमति दबाव द्वारा प्राप्त की गयी अतः ख, के विकल्प पर शून्यकरणीय है।**

**(12) शून्य संविदा—** भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (ञ) के अनुसार संविदा जो कि विधि द्वारा प्रवर्तनीय होने से परिवरत हो जाती है, तब शून्य हो जाती है जबकि वह प्रवर्तनीय होने से परिवरत हो जाती है। (A contract which ceases to be enforceable by law becomes void when it ceases to be enforceable )**उदाहरण — धारा 56 (2)**

**(अ) शून्य और शून्यकरणीय संविदा में अन्तर —**

(1) शून्य संविदा विधि के प्रभाव से रहित होती है। इसमें पक्षकारों के बीच आभार तथा कर्तव्य की उत्पत्ति नहीं होती है तथा प्रत्येक पक्षकार यह दलील दे सकता है कि संविदा प्रवर्तनीय नहीं है। जबकि शून्यकरणीय संविदा विधि के प्रभाव से रहित नहीं होती है इसे पक्षकारों में से एक के विकल्प पर अभिपूष्टि या अस्वीकृत किया जा सकता है। यह पक्षकारों में से एक के विकल्प पर प्रवर्तनीय है, किन्तु दूसरे पक्षकारों के विकल्प पर प्रवर्तनीय नहीं है।

(2) संविदा शून्य तब होती है जब वह अनैतिक, असम्भव या लोकनीति के विरुद्ध, बिना प्रतिफल के अथवा किसी नाबालिक के साथ की गयी है, जबकि संविदा शून्यकरणीय उसी हालत में होती है जबकि करार के लिए सहमति अनुचित प्रभाव, मिथ्या व्यपदेशन या कपट द्वारा प्राप्त की गयी है।

(3) शून्य संविदा को संविदा के दोनों पक्षकार अपनी सहमति द्वारा मान्य नहीं बना सकते और न ही इसके अवैधानिक स्वरूप को बदल सकत है। जबकि शून्यकरणीय संविदा को दो पक्षकारों में से एक के विकल्प पर मान्य संविदा का स्वरूप प्रदान किया जा सकत है।

(4) शून्य संविदा में चूँकि विधि का प्रभाव नहीं होता है इस कारणवश इसका स्वरूप आरम्भ से अन्त तक शून्य रहता है। जबकि शून्यकरणीय संविदा का स्वरूप प्रारम्भ में तो मान्य रहता है जब तक कि वह पक्ष जिसे संविदा को शून्य घोषित करने का अधिकार प्राप्त है, शून्य घोषित न कर दे।

(5) चूँकि शून्य संविदा का वैधानिक प्रभाव पूर्णतया शून्य होता है। इस कारण ऐसी संविदा के अन्तर्गत प्राप्त वस्तु का हस्तान्तरण तीसरे पक्ष को नहीं किया जा सकता है, जबकि शून्यकरणीय संविदा के अन्तर्गत प्राप्त वस्तु को तीसरे पक्ष को हस्तान्तरण किया जा सकता है। शर्त यह है कि इस अधिकार—प्राप्त पक्ष ने संविदा को शून्य न बना दिया हो।

**(ब) शून्य और अवैध करार में अन्तर—** भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2 (छ) के अनुसार विधि द्वारा अप्रवर्तनीय करार शून्य कहलाता है।

पोलक के मतानुसार— एक करार या अन्य कार्य जो शून्य होता है आरम्भ से ही विधि द्वारा मान्य नहीं होता।

भारतीय संविदा अधिनियम द्वारा निम्नलिखित करार शून्य घोषित किए गए हैं—

(1) जहाँ कि करार के दोनों पक्षकार करार के लिए सारभूत किसी तथ्य की बात के बारे म भूल के अधीन है वहाँ करार शून्य है **धारा 20**

(2) प्रत्येक करार जिसका प्रतिफल तथा उद्देश्य विधि—विरुद्ध है, शून्य है। **धारा 23**

(3) जहाँ करार का प्रतिफल तथा उद्देश्य भागतः विधि—विरुद्ध है तो करार शून्य होगा। **धारा 24**

(4) प्रतिफल के बिना करार शून्य है। **धारा 25**

(5) विवाह के अवरोधार्थ करार शून्य है। **धारा 26**

(6) व्यापार के अवरोधार्थ करार शून्य है। **धारा 27**

(7) वैध कार्यवाहियों के अवरोधार्थ करार शून्य है **धारा 28**

(8) वे करार जिनका अर्थ निश्चित नहीं है या निश्चित किये जाने के योग्य नहीं है, शून्य है। **धारा 30**

(9) बाजी लगाने की अनुरीति के करार शून्य है। **धारा 29**

(10) असम्भव घटनाओं पर आश्रित करार शून्य है **धारा 36**

(11) असम्भव कार्य करने का करार शून्य होता है **धारा 56**

इसके विपरीत अवैध करार वे होते हैं, जिनका उद्देश्य तथा प्रतिफल विधिवर्जित है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 23 के अनुसार निम्नलिखित करार अवैध हैं—

- (1) प्रत्येक करार जिसका प्रतिफल तथा उद्देश्य विधि द्वारा निषिद्ध है, अवैध तथा शून्य है।
- (2) यदि कोई करार इस प्रकृति का है कि यदि उसको अनुमति दी जाय तो वह किसी विधि के उपबन्धों को निष्फल कर देगा तो ऐसा करार अवैध तथा शून्य होगा।
- (3) यदि करार का प्रतिफल तथा उद्देश्य कपटपूर्ण है तो ऐसा करार अवैध होगा।
- (4) प्रत्येक करार जिसका प्रतिफल तथा उद्देश्य किसी अन्य व्यक्ति या उसकी सम्पत्ति को क्षति पहुचाता है तो वह अवैध माना जायेगा।
- (5) यदि कोई करार न्यायालय द्वारा अनैतिक तथा लोकनीति के विरुद्ध घोषित किया गया है तो वह अवैध होगा।

**शून्य तथा अवैध करार के अन्तर को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है।**

- (1) शून्य शब्द अवैध शब्द की तुलना में संकुचित है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि सभी शून्य करार अवैध नहीं होते, जबकि अवैध शब्द शून्य शब्द से अधिक व्यापार है, अतः यह कहा जा सकता है कि सभी अवैध करार शून्य होते हैं।
- (2) पक्षकारों द्वारा शून्य करार किया जाना अपराध नहीं माना जाता और पक्षकार दण्डित नहीं हो सकते हैं। जबकि अवैध करना एक अपराध है अतः इसके पक्षकार दण्डित हो सकते हैं।
- (3) शून्य करार के समर्पणिक व्यवहार प्रवर्तनीय होते हैं जबकि अवैध करार के समर्पणिक व्यवहार प्रवर्तनीय नहीं होते हैं तथा वर्थ होते हैं।

**(स) एकपक्षीय तथा द्विपक्षीय संविदा—** एकपक्षीय संविदा वह होती है जिसमें प्रतिज्ञा केवल एक पक्षकार करता है। इसमें ओर केवल प्रस्ताव रखा जाता है, और दूसरी ओर से प्रस्ताव की स्वीकृति होती है तथा वस्तु या लाभ का प्रतिग्रहण किया जाता है। इसके विपरीत द्विपक्षीय संविदा में दोनों पक्षों की ओर से प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं। जैसे— अ ब से प्रतिज्ञा करता है कि वह उससे विवाह करेगा, तथा ब अ से विवाह की प्रतिज्ञा करती है। इस प्रकार यह एक द्विपक्षीय संविदा है क्योंकि इसमें अ और ब के बीच प्रतिज्ञाओं का आदान-प्रदान हुआ है। अन्य शब्दों में द्विपक्षीय संविदा प्रतिज्ञा का आदान-प्रदान होने पर उत्पन्न होती है।

**(द) निष्पाद्य एवं निष्पादित संविदा—** निष्पाद्य संविदा वह संविदा होती है जिनमें पक्षकारों ने अपने वचन का पालन न किया हो या आंशिक रूप से किया हो पूर्ण रूप से नहीं और वचनों का पालन करना आंशिक रूप से या पूर्णरूप से शेष रह जाता है। जबकि निष्पादित संविदा वह संविदा है जिसमें एक पक्षकार द्वारा अपने वचन का पालन किया जा चुका है तथा दूसरे पक्षकार को अपने वचन का पालन करना शेष होता है। इन दोनों के मध्य अन्तर को इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

- (1) निष्पाद्य संविदा वह होती है जहाँ दोनों ही पक्षकारों द्वारा अपने-अपने वचनों को पूर्ण करना शेष होता है, जबकि निष्पादित संविदा वह होती है जहाँ एक पक्षकार अपना वचन पूर्ण कर चुका होता है परन्तु पक्षकार द्वारा अपने वचन का पूरा किया जाना शेष हो।
- (2) निष्पाद्य संविदा की समाप्ति दोनों पक्षकारों की सहमति से हो सकती है, जबकि निष्पादित संविदा की समाप्ति नया करार कर प्रस्थापना द्वारा ही सम्भव है।
- (3) निष्पाद्य संविदा में प्रतिफल का निष्पादन आने वाले समय में होने को होता है जबकि निष्पादित संविदा में प्रतिफल का निष्पादन पहले से ही हो चुका होता है।
- (4) निष्पाद्य संविदा द्विपक्षीय संविदा का ही रूप होता है जबकि निष्पादित संविदा एकपक्षीय संविदा का प्रमाण।

#### **प्रतिफल की परिभाषा प्रतिफल से सम्बन्धित विधि**

**प्रतिफल की परिभाषा—** भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(घ) में प्रतिफल की परिभाषा दी गयी है जो निम्नलिखित है—

‘जबकि प्रतिज्ञाकर्ता की इच्छा पर प्रतिज्ञाग्रहीता या किसी अन्य व्यक्ति ने कोई बात की है या करने से प्रतिविरत रहा है, या करता है या करने से प्रतिविरत रहता है, या करने की या करने से प्रतिविरत रहने की प्रतिज्ञा करता है, तब ऐसा कार्य या प्रतिविरति या प्रतिज्ञा उस प्रतिज्ञा के लिए प्रतिफल कहलाती है।’

#### **उदाहरण**

अ नामक व्यक्ति ब नामक व्यक्ति को 10,000 रुपए में अपना मकान बेचने को सहमति देता है। इस स्थिति में 10,000 रुपए देने की प्रतिज्ञा अ के मकान बेचने की प्रतिज्ञा का प्रतिफल है और अ की मकान बेचने की प्रतिज्ञा 10,000 रुपए देने की ब की प्रतिज्ञा का प्रतिफल है। यह विधिपूर्ण प्रतिफल है।

वास्तव में “बिना प्रतिफल के कोई संविदा नहीं हो सकती है और बिना प्रतिफल के कोई संविदा अस्तित्व में नहीं आ सकती।”

हाल्बरी ने प्रतिफल के सम्बन्ध में कहा कि, ‘विधि के अर्थ में मूल्यावान प्रतिफल एक पक्षकार को मिलने वाला या तो कोई अधिकार या हित या होने वाला कोई लाभ या फायदा हो सकता है अथवा दूसरे पक्षकार द्वारा उसकी प्रार्थना पर की गयी प्रतिविरति या उठायी गयी किसी हानि या उठाये गये नुकसान या उत्तरदायित्व के रूप में हो सकता है। यह जरूरी नहीं है कि प्रतिफल से वचनकर्ता को कोई लाभ हो इतना ही काफी है कि वचनग्रहीता कोई ऐसा कार्य करें जिससे कोई अन्य व्यक्ति फायदा उठाये और जिसे वचन के अभाव में न करता।’

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

इस प्रकार “प्रतिफल वह वस्तु है जिसे किया जाय, करने से प्रविरत रहा जाय, सहन किया जाय या जिसे करने का वचन दिया जाय, और उसको वचनग्रहीता वचन के सम्बन्ध में करने को प्रविरत रहता है या सहन करता है। उसका आवश्यक रूप से वचन के सम्बन्ध में होना जरूरी है, क्योंकि प्रतिफल वचन को बाध्यकारी शक्ति देता है।”

**सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया बनाम तारसीमा कम्प्रेस वुड मैन्यु.** के बाद में कहा गया है कि प्रतिफल या तो भूतलक्षी, वर्तमान में या भविष्यलक्षी हो सकता है। संविदा अधिनियम में प्रतिफल की परिभाषा जिस रूप में दी गयी है, उसका हम निम्नलिखित रूप से विश्लेषण कर सकते हैं—

- (1) जबकि प्रतिज्ञाकर्ता को इच्छा पर
- (2) प्रतिज्ञाकर्ता या अन्य किसी व्यक्ति ने—
- (3) कोई बात की है, या करने प्रतिविरत रहा है; या
- (4) करता है या करने में प्रतिविरत रहता है, या
- (5) करने की या करने से प्रतिविरत रहने की प्रतिज्ञा करता है, तब
- (6) ऐसा कार्य, प्रतिविरत या प्रतिज्ञा उस प्रतिफल कहलाती है।

दूसरे शब्दों में एक व्यक्ति की इच्छा पर किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा कोई कार्य करना या करने से प्रतिविरत रहना ही उस प्रथम व्यक्ति के लिए प्रतिफल है।

**उहाहरणार्थ—** अ, ब से अपनी एक घड़ी 500 रुपये पर लेने की प्रस्थापना करता है ब 500 रुपये में इसे क्रय करने की अपनी सम्मति प्रकट कर देता है। यह 500 रुपए अ के लिए घड़ी का प्रतिफल है।

**(1) प्रतिज्ञाकर्ता की इच्छा पर—** प्रतिफल की परिभाषा का सबसे आवश्यक तत्व यह है कि कार्य या प्रतिविरति प्रतिज्ञाकर्ता की इच्छा पर होना चाहिए। यदि वह कार्य या प्रतिविरति अन्य किसी व्यक्ति की इच्छा पर होगी तो प्रतिफल है।

**दुर्गाप्रसाद बनाम बलदेव (1880)** के बाद में वादी ने जिने के कलेक्टर की इच्छा पर एक बाजार बनवाया। प्रतिवादी, जिसने बाद म उक्त बाजार में एक दुकान ले ली यह बायदा किया कि उसके द्वारा जो भी वस्तुएँ बाजार में बेची जायेंगी, उन पर वह वादी को एक निश्चित कमीशन देगा। प्रतिवादी द्वारा कमीशन का भगतान न करने पर वादी ने उस पर दावा किया। न्यायालय ने इस दावे को खारिज कर दिया और कहा कि वादी ने बाजार कलेक्टर की इच्छा पर बनवाया था और जब उसने यह कार्य किया था तब उसके मस्तिष्क में प्रतिवादी नहीं था।

**(2) प्रतिग्रहीता या कोई अन्य व्यक्ति—** प्रतिफल का दूसरा आवश्यक तत्व यह है कि प्रतिफल प्रतिग्रहीता या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में अंग्रेजी विधि भारतीय विधि से भिन्न है। अंग्रेजी विधि में प्रतिफल प्रतिग्रहीता के द्वारा ही दिया जाना चाहिए। टिवडल बनाम ऐटकिन्सन (1861) के बाद में यह कहा गया कि कोई भी अजनबी किसी ऐसे संविदा से लाभ नहीं उठा सकता जिसका वह पक्षकार नहीं है।

उपर्युक्त सिद्धान्त को हाउस ऑफ लार्ड्स ने डनलप न्यूमेटिक टायर कं. लि. बनाम सेलिफ्स एण्ड कं. (1951) के बाद में अनुमोदन कर दिया। विस्काउण्ट हॉल्डेन ने इस सिद्धान्त का अनुमोदन कर दिया कि प्रतिफल सदैव प्रतिग्रहीता की ओर से होना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंग्रेजी विधि के अन्तर्गत प्रतिफल सदैव प्रतिज्ञाग्रहीता द्वारा ही दिया जाना चाहिए। परन्तु भारतीय विधि में यह आवश्यक नहीं है। धारा 2(घ) में यह स्पष्टतया लिखा है कि “प्रतिफल प्रतिग्रहीता या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिया जा सकता है।”

**(3) या कुछ कार्य किया है या करने से प्रतिविरत/अलग रहा है—** सर्वप्रथम हमें यह जानना चाहिए कि भूतकालिक प्रतिफल क्या है? भूतकालिक प्रतिफल करार किए जाने से पूर्णरूप से किया हुआ, क्षमा किया हुआ या होने दिया गया कोई कार्य होता है। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे के लिए कुछ कर चुकता है, और बाद में दूसरा व्यक्ति प्रतिज्ञा करता है, तो वह प्रतिज्ञा किसी प्रतिफल से समर्पित नहीं होता है और इस मामले में यह कहा जाता है कि वह प्रतिफल भूतकालिक है।

**(4) करता है या करने से प्रतिविरत रहता है—** परिभाषा में यह भाग बिल्कुल स्पष्ट तत्व है कि जब प्रतिग्रहीता की इच्छा पर कोई कार्य करता है या उससे अलग रहन की प्रतिज्ञा करता है तो धारा 2(घ) के अन्तर्गत यह वैधानिक प्रतिफल होता है।

**(5) करने या प्रतिविरत रहने की प्रतिज्ञा करता है—** प्रतिफल का यह भी आवश्यक तत्व है कि जब प्रतिज्ञाग्रहीता की इच्छा पर कोई कार्य करने या उससे अलग रहन की प्रतिज्ञा करता है तो धारा 2(घ) के अन्तर्गत यह प्रतिफल वैध होगा। धारा 2(घ) के अन्तर्गत दावा करने से अलग रहना एक अच्छा प्रतिफल होगा।

**(6) ऐसा कार्य, या प्रतिविरत या प्रतिज्ञा उस प्रतिफल कहलाती है—** इस विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

**(क) प्रतिफल की पर्याप्तता—** यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिफल पर्याप्त ही हो। यदि कोई व्यक्ति प्रतिफल प्राप्त कर लेता है जिसके लिए संविदा की गयी है, तो न्यायालय इस बात की जाँच नहीं करेगा कि प्रतिफल उसकी प्रतिज्ञा के अनुपात में पर्याप्त था या नहीं। प्रतिफल प्रतिज्ञाकर्ता या किसी अन्य व्यक्ति के लिए किसी फायदे के रूप में हो सकता है, या ऐसा भी हो सकता है कि उसमें स्पष्ट रूप से किसी भी पक्षकार को कोई फायदा न हो किन्तु प्रतिज्ञाग्रहीता के लिए अहितकर मात्र हो। प्रत्येक अवस्था में पक्षकारों का यह कर्तव्य है कि वह करार करते समय यह देखे कि प्रतिफल पर्याप्त है या नहीं। यह न्यायालय का कर्तव्य नहीं है कि वह संविदा के प्रवर्तन के समय यह जाँच करे कि वह पर्याप्त है या नहीं।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 की व्याख्या 2 में स्पष्ट रूप से लिखा है कि “कोई करार, जिसके लिए प्रतिज्ञाकर्ता की सम्मति स्वतन्त्र रूप से दी गयी है केवल इस कारण शून्य नहीं कि प्रतिफल अपर्याप्त है किन्तु प्रतिफल की अपर्याप्तता न्यायालय द्वारा इस प्रश्न को अवधारित करने में ध्यान में रखी जा सकेगी कि प्रतिज्ञाकर्ता की सम्मति स्वतन्त्र रूप से ली गयी थी या नहीं। इस प्रकार भारत में यह सामान्य नियम है कि प्रतिफल के अपर्याप्त होने पर करार को अवैध घोषित नहीं किया जा सकता।

(ख) प्रतिफल वास्तविक होना चाहिए— प्रतिफल का विधि की दृष्टि में कुछ मूल्य होना चाहिए। इसके अन्तर्गत संविदा करने वाले पक्षकार की हानि, असुविधा तथा अपकार भी आता है। प्रतिफल भासक अनिश्चित और असम्भव नहीं होना चाहिए।

**प्रतिफल के सम्बन्ध में अंग्रेजी व भारतीय विधि में अन्तर—**

- (1) भारत में प्रतिफल भूतकालिक हो सकता है और उसका वर्तमानकालिक होना जरूरी नहीं है इंग्लैण्ड में प्रतिफल का जरूरी तौर पर वर्तमानकालिक या भविष्यकालिक होना आवश्यक है।
- (2) अंग्रेजी विधि के अधीन प्रतिफल को; चाहे वह प्रतिज्ञा की तुलना में अपर्याप्त ही क्यों न हो, विधि की दृष्टि में किसी मूल्य का होना जरूरी है, अर्थात् उसका वास्तविक होना जरूरी है। प्रतिफल की भारतीय परिभाषा विशिष्ट रूप से यह नहीं कहती कि प्रतिफल को कितने मूल्य का होना जरूरी है।

**प्रतिफल के प्रकार—**

- (1) **भूतकालिक प्रतिफल**— जब पतिज्ञाकर्ता की इच्छा पर प्रतिज्ञाग्रहीता अथवा किसी अन्य व्यवित द्वारा कुछ कार्य किया जा चुका है अथवा वह उसके करने से विरत रहा है तो यह भी प्रतिफल माना जाता है— लेकिन जब कार्य या प्रतिविरति उस सम्बन्ध में करार किए जाने से पूर्व ही की जा चुकी है तो वह करार के लिए प्रतिफल कहलाता है। यह प्रतिफल दो प्रकार के होते हैं—
- (अ) प्रतिज्ञाकर्ता को इच्छा पर दिया गया भूत प्रतिफल,
- (ब) प्रतिज्ञाकर्ता द्वारा स्वयं अपनी इच्छा से दिया भूत प्रतिफल
- (स) हालांकि आंग्ल विधि द्वारा भूत प्रतिफल को मान्यता नहीं दी जाती है परन्तु वचनदाता की इच्छा पर दिया गया भूत प्रतिफल भारतीय तथा आंग्ल दोनों ही विधियों द्वारा मान्य है—

चूंकि भूत प्रतिफल को भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(बी) द्वारा मान्यता प्राप्त है और इसकी भी उपरोक्त दो अवस्थाओं आ तथा ब में से अवस्था के भूतकालिक प्रतिफल को आंग्ल विधि द्वारा भी मान्यता प्राप्त है अतः यह कहना सही नहीं होगा कि भूतकालिक प्रतिफल नहीं है बल्कि सही बात यह है कि भूतकालिक प्रतिफल भी एक अच्छा, वैध व मान्य प्रतिफल है।

- (2) **वर्तमान प्रतिफल**— जब करार से सम्बन्धित कोई कार्य या विरति करार के समय ही की जाती है तो इसे वर्तमान प्रतिफल कहते हैं।
- (3) **भावी प्रतिफल**— जब एक पक्ष द्वारा भविष्य में किसी कार्य को करने या उनसे विरत रहने का वचन दिया जाता है तो उसको भावी प्रतिफल कहते हैं।
- (4) **वास्तविक तथा मूल्यवान प्रतिफल**— वैध करार के लिए यह आवश्यक है कि प्रतिफल वास्तविक होना चाहिए जिसका कुछ मूल्य हो। यह भ्रमात्मक तथा अवास्तविक अथवा ऐसा नहीं होना चाहिए जिसका कोई मूल्य न निकाला जा सके, जिस प्रतिफल का कोई प्रतिफल नहीं माना जा सकता है।
- (5) **पर्याप्त प्रतिफल**— प्रतिफल कितना हो यह पक्षकारों की अपनी इच्छा पर निर्भर होता है। इस सम्बन्ध में विधि का प्रतिबन्ध नहीं है। प्रतिफल अपर्याप्त भी हो सकता है तो भी न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। न्यायालय यह अवश्य देखेगा कि ऐसे मामले में पक्षकार की सहमति स्वतन्त्र थी।
- (6) **न्यायोचित प्रतिफल**— किसी करार को वैध करार बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसका प्रतिफल न्यायोचित हो धारा 23 म यह प्रावधान है कि यदि करार का प्रतिफल न्यायोचित नहीं है तो ऐसा करार शून्य होगा।

#### संविदा से बाहर का व्यक्ति (अजनबी) संविदा के सम्बन्ध में वाद नहीं ला सकता

(stranger to a contract can not sue.)

इंग्लैण्ड की विधि यह है कि संविदा का अन्य—जन दावा नहीं कर सकता। ट्वीडल बनाम ऐटकिन्सन (1861) इस पर मुख्य वाद है। इस वाद में यह निश्चय किया गया था कि वह व्यक्ति जो करार का पक्षकार नहीं है, इस पर वाद नहीं चला सकता। इस वाद का मुख्य तथ्य यह था कि वादी ने विलियम गाई की पुत्री से विवाह करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञा के प्रतिफल के रूप में गाई और वादी के पिता ने कुछ रूपया वादी को देने का कहा। गाई ने रूपया नहीं दिया इस पर वादी ने संविदा के निष्पादकों पर दावा दायर किया। यह निश्चय किया गया कि वादी दावा करने का अधिकार नहीं रखता था।

प्रतिफल से अन्य जन संविदा का लाभ नहीं उठा सकता, चाहे वह संविदा उसी के लाभ के लिए ही क्यों न की गयी हो।

यह सिद्धान्त कि अजनबी व्यक्ति संविदा के सम्बन्ध में वाद नहीं ला सकता एक और अन्य सिद्धान्त जिसको **Doctrine of privity of contract** के नाम से जाना जाता है, से सम्बन्धित है। इन दोनों नियमों में जिस बात पर जोर दिया गया है, इसे साधारण तरीके से इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति संविदा का पक्षकार नहीं है तो वह संविदा के पक्षकार के साथ संविदा का कोई सम्बन्ध नहीं रखता या कहना चाहिए कि वह संविदा के लिए अजनबी है और उसको इस सम्बन्ध में वाद लाने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है— ऐसे ही सन्दर्भ में कहा जाता है कि पक्षकारों के बीच कोई अर्थात् संविदा जैसा सम्बन्ध उपस्थित नहीं है और वह व्यक्ति अजनबी है। यह दोनों ही नियम प्रतिफल से सीधा सम्बन्ध रखते हैं। प्रतिफल के आवश्यक तत्वों में से प्रमुख तत्व यह है कि कोई कार्य का किया जाना या उसके किए जाने से विरत रहना वचनदाता प्रस्तावकर्ता की इच्छा होनी चाहिए यदि यह कार्य या विरति किसी अन्य व्यक्ति की इच्छा पर होगा तो प्रतिफल नहीं कहलायेगा और प्रतिफल नहीं होगा तो वैध करार नहीं होगा और ऐसे व्यक्ति को वाद लाने का कोई अधिकार नहीं होगा। यह सिद्धान्त भारत तथा इंग्लैण्ड दोनों में ही समान रूप से लागू है और माना जाता है। दावा केवल उन्हीं पक्षकारों द्वारा या उन पर ही दायर किया जा सकता है जो कि संविदा के पक्षकार हैं।

अपवाद

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

- (1) जहाँ न्यास उत्पन्न हो— न्यास के मामले में न्यास की जायदाद या फायदों में हित रखने वाले व्यक्तियों को यह अधिकार होता है कि वह दावा दायर कर सके यद्यपि यह न्यास संविदा में पक्षकार नहीं होते हैं।
- (2) जहाँ भार स्थापित किया गया हो— जब किसी अन्य व्यक्ति के फायदों के लिए भार उत्पन्न किया जाता है तो वह व्यक्ति अजनबी होते हुए भी दावा दायर कर सकता है।
- (3) परिवार की सम्पत्ति का बैंटवारा— जब परिवार की सम्पत्ति का बैंटवारा होने पर किसी अवयस्क या बालिका के विवाह या पालन-पोषण के लिए कोई प्रावधान किया जाता है तो ऐसे व्यक्ति अपने हक के लिए दावा ला सकते हैं हाँलाकि वह बैंटवारे के पक्षकार नहीं होते।
- (4) विवाह के करार के अन्तर्गत हुई व्यवस्था— जहाँ पति-पत्नी के माता-पिता यह निश्चय करते हैं कि पत्नी को एक निश्चित रकम खर्च के रूप में मिलेगी वहाँ ऐसी रकम के न मिलने पर पत्नी दावा कर सकती है। इस सम्बन्ध में खाजा मोहम्मद खाँ बनाम हुसैनी बीबी का वाद उल्लेखनीय है जो खर्च ए पानदान के वाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ वर और वधु दोनों के जनकों ने यह इकरार किया था कि वधु वादी को प्रतिमास एक सौ रुपया पानदान के खच के रूप में मिला करेगा। 100 रुपये प्रतिमास न मिलने पर वधु वादी ने दावा दायर किया जिसमें यह निर्णय किया गया कि संविदा प्रतिवादी पर बाध्यकारी थी। यद्यपि वादिनी संविदा का पक्षकार नहीं थी फिर भी उसने संविदा के अधीन लाभप्रद हित प्राप्त कर लिया था आर इसलिए वह भत्ता वसूल करने की अधिकारिणी थी।
- (5) अभिस्वीकृति— जब किसी संविदा के अन्तर्गत कोई पक्षकार अन्य या तीसरे पक्ष को कुछ धन देना स्वीकार करता है और वह तीसरा व्यक्ति या अन्य व्यक्ति इसकी अभिस्वीकृति कर देता है तो इसके द्वारा वह उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लेता है और वह तीसरा या अजनबी व्यक्ति भी ऐसी संविदा को लागू करवा सकता है।
- (6) जहाँ ऐसा न्याय के विरुद्ध होगा— यदि न्यायालय यह समझता है कि किसी न्यायालय द्वारा इस सिद्धान्त के आधार पर वाद न चलाने देने से न्यायोचित नहीं होगा तो न्यायालय उस मनुष्य को वाद चलाने के लिए अधिकार दे सकते हैं।

### प्रतिस्थापनाओं की संसूचना, प्रतिग्रहण तथा अपखण्डन के विषय में

**प्रस्थापना**— प्रस्थापना शब्द की परिभाषा भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(क) में दी गयी है जिसके अनुसार, “जबकि एक व्यक्ति, किसी बात के करने या करने से प्रतिविरत रहने की अपनी रजामन्दी ऐसे कार्य या प्रतिविरति के प्रति किसी दूसरे की अनुमति अभिप्राप्त करने की दृष्टि से उस दूसरे को संज्ञात करता है तब उसके बारे में कहा जाता है कि वह प्रस्थापना करता है।”

वास्तव में प्रस्थापना में उन शर्तों का समावेश किया जाना चाहिए जिन पर प्रस्तावक उन कृत्यों को करने के लिए इच्छुक है, परन्तु इच्छुता की अभिव्यक्ति से भी अधिक कुछ उनसे होना चाहिए वह कुछ निवेदन के रूप में होना चाहिए।

- (1) **दो पक्षकार**— प्रस्थापना का सबसे आवश्यक तत्व दो पक्षकारों का होना आवश्यक है दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पक्षकार किसी भी प्रस्थापना का आधार है। एक पक्षकार वह जो प्रस्थापना करता है तथा दूसरा वह जिसके सम्मुख प्रस्थापना रखी जाती है। प्रथम पक्षकार प्रस्थापनार्ता / वचनदाता कहलाता है तथा दूसरा पक्षकार प्रस्थापना ग्रहीता / वचनग्रहीता कहलाता है।
- (2) प्रस्थापना एक व्यक्ति की किसी कार्य को करने या करने से प्रतिविरत रहने की इच्छा को प्रकट करने वाला होता है।
- (3) प्रस्थापना दूसरे पक्षकार की स्वीकृति प्राप्त करने उद्देश्य से किया जाता है इस आधार पर प्रस्ताव करने के आशय की घोषणा एवं प्रस्ताव करने के निमन्त्रण से पूर्णतया भिन्न होता है। प्रस्ताव करने के आशय की घोषणा एवं प्रस्ताव करने के निमन्त्रण किसी भी प्रकार से संविदा को जन्म नहीं देते जबकि प्रस्ताव जन्म देता है।

### **प्रस्थापना के वैधानिक नियम**

- (1) **विधिक सम्बन्ध**— प्रस्ताव को विधिक सम्बन्ध उत्पन्न करने के इरादे से किया गया होना चाहिए तथा इसे वैधिक सम्बन्ध उत्पन्न करने के लिए सक्षम होना चाहिए। प्रस्ताव करने वाले तथा उसे स्वीकार करने वाले व्यक्ति को यह मालूम होना चाहिए कि यदि संविदा भंग होती है तो इसके विधिक परिणाम भी होंगे। महज सामाजिक या नैतिक सम्बन्ध जिनका आशय द्रव्य-मूल्य नहीं होता है, विधिक दायित्वों को जन्म नहीं देते हैं। अर्थात् भोजन के लिए दिये हुए निमन्त्रण से प्रस्ताव की संरचना नहीं होती है।

इस सम्बन्ध में बालफर बनाम बालफर (1919) का वाद है। इसके तथ्य इस प्रकार है— प्रतिवादी सीलोन में तेनात सरकारी कर्मचारी था। उसकी पत्नी इंग्लैड में थी। वह अपनी पत्नी से यह प्रतिज्ञा करता है कि वह उसे मासिक भत्ता तब तक देगा। जब तक कि वह स्वास्थ खराब होने के कारण इंग्लैड में रहेगी। पत्नी इस आभार को प्रवर्तित नहीं करा सकती क्योंकि संविदा की प्रकृति से यह प्रकट नहीं होता कि उसका आशय विधिक आभार उत्पन्न करना था। वैध प्रस्ताव का निश्चित तथा स्पष्ट होना आवश्यक है। न्यायालय का कर्तव्य है कि वह संविदा का निर्वचन करे। पक्षकारों के प्रति उनका कर्तव्य यह नहीं है कि वह पक्षकारों में मध्य संविदा कराए।

यदि पक्षकारों अभिव्यक्त रूप से स्पष्ट कर देते हैं कि उनका इरादा अपने को विधिक सम्बन्धों से आबद्ध करना नहीं है तो उनके मध्य करार संविदा नहीं होगा।

- (2) **प्रस्ताव परिशुद्ध तथा निश्चित होना चाहिए**— वैध प्रस्ताव का निश्चित तथा स्पष्ट होना आवश्यक है। प्रस्ताव अस्पष्ट नहीं होना चाहिए। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 29 में यह स्पष्ट प्रावधान है कि वे करार जो या तो अस्पष्ट है या स्पष्ट होने योग्य नहीं है, शून्य होते हैं।

(3) **प्रत्येक प्रस्ताव को संसूचित किया जाना आवश्यक है**— प्रत्येक प्रस्ताव को संसूचित किया जाना आवश्यक है। प्रस्ताव व्यक्त या विवक्षित दोनों प्रकार हो सकता है। धारा 4 के अनुसार किसी प्रस्ताव की संसूचना तब पूर्ण होती है जबकि यह उस व्यक्ति के ज्ञान में आ जाती है। यहाँ पर महत्वपूर्ण वाद लालमन शुक्ल बनाम गौरीदत्त (1913) का विवरण देना आवश्यक होगा। इस वाद के तथ्य निम्नलिखित हैं—

प्रतिवादी का भतीजा घर से भाग गया। उसने अपने कर्मचारी लालमन को उसे खोजने को भेजा। बाद में उसने घोषणा की कि जो कोई उसके भतीजे को खोजेगा, उसे 501 रुपए का पुरस्कार दिया जायेगा। लालमन को इस घोषणा का ज्ञान लड़के को खोजे लेने के प'चात् हुआ। लालमन ने यह

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

पुस्तकार प्राप्त करने के लिए दावा किया। न्यायालय ने दावे को खारिज करते हुए निर्णय दिया कि वैध सविदा का निर्माण नहीं हुआ था क्योंकि लालमन को प्रस्ताव की संसूचना प्राप्त नहीं हुई थी।

हैरिस बनाम जी. डब्ल्यू. आर.— हैरिस ने एक स्टेशन के अमानती सामानघर में एक सामान रखा और उसको एक टिकट मिला, जिस पर लिखा था— दूसरी ओर छपी शर्तों लागू होंगी। 'टिकटों के दूसरी ओर छपा था— 'जिन सामानों का मूल्य पाँच पौण्ड से अधिक है, उनके खोने या उनकी हानि पहुँचने की जिम्मेदारी कम्पनी की न होगी। यदि सामान जमा करने वाला व्यक्ति अतिरिक्त भुगतान करेगा तब कम्पनी को उन सामानों की भी जिम्मेदारी होगी जिनका मूल्य 5 पौण्ड से अधिक है। हैरिस जानता था कि टिकट के पीछे कुछ शर्त छपी हैं, पर उन शर्तों को पढ़ने या समझने का प्रयत्न उसने नहीं किया। सामान जो 5 पौण्ड से अधिक का था खो गया और कम्पनी ने उसका मूल्य देने से इन्कार कर दिया। क्योंकि उसका अतिरिक्त भुगतान उसने नहीं किया था। इसमें यह निर्णय किया गया है कि हैरिस पर वे सभी शर्तें लागू हैं जो टिकट पर छपी थीं। यदि उसने उन शर्तों को नहीं पढ़ा या नहीं समझा तो यह उसकी गलती थी किन्तु यह माना गया कि उसे संसूचना दी गयी थी।

(4) **प्रस्ताव विशेष या सामान्य हो सकता है—** प्रस्ताव किसी निर्वाचित व्यक्ति या व्यक्तियों को किया जा सकता है। या दुनिया के हर व्यक्ति को किया जा सकता है इस सूरत में इसे सामान्य प्रस्ताव कहते हैं। जब प्रस्ताव किसी निर्वाचित व्यक्ति या व्यक्तियों को किया जाता है तब वह विनिर्दिष्ट प्रस्ताव कहलाता है। जब कोई प्रस्ताव सामान्य होता है या पूरे विवर को किया जाता है, तो वह उक्त प्रस्ताव की स्वीकृति तथा उसकी शर्तों या कार्यान्वयित प्रस्ताव को प्रवर्तनीय सविदा में परिणित करेन के लिए पर्याप्त होती है। इस सम्बन्ध में कार्लिल बनाम कार्बोलिक स्पोक बाल कम्पनी 1893 नामक वाद विषय उल्लेखनीय है।

(5) **प्रस्ताव और प्रस्ताव करने के आमन्त्रण में अन्तर होता है—** प्रस्ताव, प्रस्ताव के आमन्त्रण से भिन्न होता है। कई कथन प्रस्ताव प्रतीत होते हैं किन्तु वे केवल प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण होते हैं। जैसे व्यापारी के सामान्य मूल्यों की दर या किसी जॉच के अन्तर में निम्नतम मूल्यों की दर, पुस्तकों का सूचीपत्र। एक निविदा सूचना केवल प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण होता है। अतः ठेकेदारों द्वारा प्रस्तावित बातों की स्वीकृत नहीं किया जा सकता। वास्तव में प्रत्येक कथन, जो प्रस्ताव प्रतीत होता है। वह प्रस्ताव नहीं होता है और उससे कोई विधिक दायित्व उत्पन्न नहीं होते हैं। दुकानदार का सूची-पत्र प्रस्ताव के लिए आमन्त्रण मात्र है प्रस्ताव तथा प्रस्ताव के लिए हार्डी बनाम फैसी 1893 552 का मामला महत्वपूर्ण है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय से उक्त सिद्धान्त का अनुमोदन मैकफरसन बनाम अपौना, A.I.R. 1951 S.C. 184 के वाद में कर दिया है। इस वाद में वादी ने प्रतिवादी के बंगले को क्रय करने का प्रस्ताव उसके एजेण्ट द्वारा किया। एजेण्ट द्वारा किया। एजेण्ट ने तार द्वारा अपने मालिक से पूछा कि बंगले के लिए 6000 का प्रस्ताव मिला है। प्रतिवादी ने कहा कि वह बंगला 10000 रुपये कम में नहीं बेचेगा। वादी 10000 रुपये में खरीदने को राजी हो गया तथा अपनी स्वीकृति एक पत्र एजेण्ट को भेज दी। परन्तु मालिक ने बंगला को अधिक मूल्य पर किसी अन्य व्यक्ति को बेच दिया। वादी ने प्रतिवादी के विरुद्ध दावा किया परन्तु न्यायालय ने उसे खारिज कर दिया। न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि "प्रतिवादी का यह उत्तर कि वह बंगले को 10000 रुपये से कम पर नहीं बेचेगा। एक प्रस्ताव न होकर प्रस्ताव के लिए केवल निम्नन्यता मात्र था।"

(6) **अभिप्राय का कथन मात्र पर्याप्त नहीं है—** किसी व्यक्ति द्वारा अपने अभिप्राय की अभिव्यक्ति मात्र पर्याप्त नहीं होती है। अभिव्यक्ति दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करेन के इरादे से की गयी होनी चाहिए।

**स्वीकृति शब्द की परिभाषा—** सविदा अधिनियम की धारा 2 खं में स्वीकृति शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है— जिस व्यक्ति से प्रस्ताव किया जाता है जब वह व्यक्ति अपनी अनुमति की सूचना दे देता है तब यह कहा जाता है कि— प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया गया है।

धारा 8 में कहा गया है कि प्रस्ताव की शर्तों का पालन या प्रस्ताव के साथ की जा सकने वाली पारस्परिक प्रतिज्ञा के लिए किसी प्रतिफल की स्वीकृति प्रस्ताव की स्वीकृति है।

जब प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया जाता है तो वह प्रतिज्ञा बन जाता है। जो व्यक्ति प्रस्थापना करता है उसे प्रतिज्ञाकर्ता कहते हैं यथा जिस व्यक्ति से वह की जाती है उसे प्रतिज्ञाग्रहीता कहते हैं।

स्वीकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं—

(1) स्वीकृति उसी व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए जिसके लिए प्रस्ताव है किसी अन्य के द्वारा नहीं। उस व्यक्ति के द्वारा स्वीकृति दी जा सकती है जिसे स्वीकारक की ओर से ऐसा अधिकार प्राप्त हो।

(2) स्वीकृति का संसूचित किया जाना आवश्यक है— किसी भी प्रस्ताव की स्वीकृति का संसूचित किया जाना आवश्यक है तभी वह बाध्यकारी हो सकती। इस सम्बन्ध में फेल्ट हाउस बनाम बिण्डले वाद उल्लेखनीय है। इस वाद में वादी ने अपने भतीजे को एक प्रस्ताव भेजा कि वह उसका घोड़ा 30 पौण्ड 15 फी. में खरीदना चाहता है उसने यह भतीजे कि यदि उसे इस प्रस्ताव को कोई उत्तर नहीं मिलता तो वह समझेगा कि 30 पौण्ड 150 शि. म घोड़ा उसका हो गया। भतीजे द्वारा इस प्रस्ताव का कोई उत्तर नहीं दिया गया परन्तु उसके प्रतिवादी जो कि एक नीलामकर्ता था, को निर्दृष्टि दिए कि वह उक्त घोड़ा न बेचे। यह स्पष्ट है कि घोड़ा अपने चाचा के लिए आरक्षित रखना चाहता था। परन्तु प्रतिवादी ने गलती से उसे घोड़े को बेच दिया अतः वादी ने प्रतिवादी के प्रति दावा दायर किया। न्यायालय ने वाद को खारिज करते हुए निर्णय दिया चूंकि वादी के भतीजे ने प्रस्ताव की स्वीकृति की संसूचना नहीं भेजी थी इस कारण सविदा का निर्माण नहीं हुआ। न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि स्वीकृति की संसूचना या तो प्रस्ताव करने वाले को स्वयं या उसके अधिकृत एजेण्ट को दी जानी चाहिए। किसी अजनबी को स्वीकृति की संसूचना देना पर्याप्त नहीं होगा।

(3) स्वीकृति शब्दों से या आवरण से की जा सकती है— स्वीकृति के लिए यह आवश्यक ही है कि वह पूर्ण व शर्तरहित हो। यदि स्वीकृति में किंचित् मात्र भी होरफेर किया जाता है तो वह

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

स्वीकृति, स्वीकृति नहीं मानी जायेगी बल्कि वह स्वयं प्रति-प्रस्ताव होती है। अतः एक बन्धनकारी संविदा करने के लिए यह अनिवार्य है कि प्रस्थापना की शर्तों का पूर्णरूप से और बिना शर्त स्वीकृति होनी चाहिए।

(4) **प्रस्तावकर्ता स्वीकृति की संसूचना को अभित्याग कर सकता है**— चूँकि स्वीकृति की सूचना प्रस्तावकर्ता के हित में होती है अतः यदि वह चाहे तो उसका अभित्याग कर सकता है। कार्लिल बनाम कार्लिल स्मोक बाल कम्पनी 1893 के बाद में न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि वैध संविदा के लिए यह आव”यक है कि स्वीकृति की संसूचना दी जानी चाहिए परन्तु चूँकि स्वीकृति की सूचना प्रस्तावकर्ता के हित में होती है अतः प्रस्तावकर्ता चाहे तो उसका अभित्याग कर सकता है।

(5) **स्वीकृति पूर्ण तथा बिना शर्त के होनी चाहिए तथा वह प्रस्थापना की शर्तों के समान होनी चाहिए**— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 7 कहती है कि प्रस्थापना को प्रतिज्ञा में संपरिवर्तित करने के लिए स्वीकृति पक्की तथा निरपेक्ष होनी चाहिए। अतः एक वैध स्वीकृति के लिए यह आव”यक है कि वह पूर्ण तथा शर्त रहित हो।

हाइडा बनाम रेंच 1840 के बाद में कहा गया है कि प्रस्थापना तथा स्वीकृति एक-दूसरे के समान होती चाहिए। उक्त बाद में प्रतिवादी ने अपना फार्म वादी को 1000 पौण्ड में बेचने से इन्कार कर दिया। वादी ने प्रतिवादी के विरुद्ध दावा दायर कर दिया। न्यायालय ने दावा खारिज करते हुए निर्णय दिया कि वैध संविदा का निर्माण नहीं हुआ था। क्योंकि वादी का यह कहना है कि वह फार्म 900 पौण्ड में खरीदेगा वास्तव में प्रस्थापना की वह स्वीकृति नहीं थी वरन् एक प्रति-प्रस्थापना थी जिसने की मूल प्रस्थापना को नष्ट कर दिया।

जब प्रस्थापना तथा स्वीकृति के किसी भी महत्वपूर्ण शर्त के सम्बन्ध में कोई भिन्नता होती है तो स्वीकृति को पूर्ण नहीं कहा जा सकता तथा उससे एक वैध संविदा का निर्माण नहीं होगा।

(6) **प्रस्थापना के समाप्त होने या वापस लिए जाने से पूर्व ही स्वीकृति का प्रतिग्रहण हो जाना चाहिए।**

(7) **स्वीकृति केवल वह व्यक्ति दे सकता है जिसको प्रस्थापना की जाती है**— प्रस्थापना केवल वही व्यक्ति स्वीकृत कर सकता है जिसको प्रस्थापना की गयी है।

(8) **प्रतिग्रहण, प्रतिज्ञाकर्ता पर उसे समय बाध्यकारी हो जाता है**— जबकि प्रतिज्ञाग्रहीता, प्रतिग्रहण की संसूचना भेज देता है और प्रतिज्ञाग्रहीता पर उस समय बाध्यकारी हो जाता है जबकि प्रतिज्ञाकर्ता की जानकारी में यह संसूचना आती है।

### प्रस्थापना की संसूचना, स्वीकृति तथा विखण्डन की संसूचना कब पूर्ण होती है?

प्रस्थापनाओं की संसूचना, प्रतिग्रहण तथा अपखण्डन— भारतीय संविदा की धारा 3 के अनुसार, प्रस्थापनाओं की संसूचना, प्रस्थापनाओं का प्रतिग्रहण और प्रस्थापनाओं तथा प्रतिग्रहणों का अपखण्डन क्रमः प्रस्थापना करने वाले, प्रतिग्रहण करने वाले या अपखण्डन करने वाले पक्षकार के किसी कार्य या कार्यलोप से समझा जाता है जिसके द्वारा कि वह ऐसी प्रस्थापनाओं या अपखण्डन को संसूचित करने का आ”य रखता है या जो कि उसे संसूचित करने का प्रभाव रखता है।

प्रस्थापना करने का केवल मानसिक संकल्प मात्र उसके प्रतिग्रहण के लिए पर्याप्त नहीं होता, जब तक कि ऐसे आ”य से दूसरे पक्षकार को संसूचित नहीं कर दिया जाता और इसी प्रकार केवल अव्यक्त आ”य ही प्रस्थापना का प्रतिग्रहण नहीं हो सकता।

संसूचना चाहे वह प्रस्थापना सम्बन्धी हो या प्रतिग्रहण सम्बन्धी हो या अपखण्डन सम्बन्धी हो संसूचित करेन के लिए आ”य कार्य या कार्यलाप को समिलित करती है, या जो प्रभावकारी रीति की प्रस्थापना प्रतिग्रहण या अपखण्डन को संसूचित करती है। संसूचना आचरण द्वारा भी हो सकती है इसके लिए यह आव”यक नहीं है कि यह शब्दों द्वारा ही हो।

### संसूचना कब पूर्ण होती है?

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 4 के अनुसार—

(1) **किसी प्रस्तावना की संसूचना तब पूर्ण हो जाती है**, जबकि वह उस व्यक्ति के, जिसको कि वह कि गयी है, ज्ञान में आ जाती है इस प्रकार यदि अपत्र द्वारा ब को अपना घर बेचने की प्रस्थापना करता है तो प्रस्थापना की संसूचना उस समय पूर्ण हो जाती है जब ब यह पत्र प्राप्त करता है।

(2) **प्रतिग्रहण की सूचना**— जहाँ तक कि प्रस्थापक का सम्बन्ध है तब पूर्ण हो जाती है जबकि वह उसके पास भेजने के लिए पारेषण के अनुक्रम में ऐसे कर दी गयी है कि वह प्रतिग्रहणकर्ता की शक्ति के बाहर हो गयी है।

जहाँ तक कि प्रतिग्रहणकर्ता का सम्बन्ध है तब पूर्ण हो जाती है जबकि वह प्रस्थापक के ज्ञान में आ जाती है।

(अ) **जहाँ तक कि प्रस्थापक का सम्बन्ध है**— प्रतिग्रहण की संसूचना जहाँ तक कि प्रस्थापक का सम्बन्ध है तब पूर्ण हो जाती है जबकि यह पारेषण के क्रम में रख दी गयी है। ऐसी अवस्था में चाहे प्रदान करने में विलम्ब हो गया हो या पत्र अपने गन्तव्य रथान में न पहुँच पाया हो यह सारहीन बात है। पत्र में उचित पता लिखकर डाक में डाल दिया जाना प्रतिग्रहण की संसूचना है। जहाँ प्रतिग्रहण का एक पत्र उचित पता लिखकर डाक में दिया गया था किन्तु डाकखाने की ओर से उसमें विलम्ब कर दिया गया था और प्रस्थापक संविदा का विखण्डन करना चाहता था तो यह धारण किया कि पत्र का डाक में डाल दिया जाना एक प्रतिग्रहण था जो प्रस्थापक के विरुद्ध बाध्यकारी था। इस प्रकार यदि ब, अ के पत्र की प्रस्थापना प्रतिग्रहण करता है और अपने प्रतिग्रहण की सूचना डाक द्वारा भेजता है तो अ के विरुद्ध प्रतिग्रहण की संसूचना उस समय पूर्ण हो जाती है जबकि व पत्र डाक में डाल देता है और ऐसी स्थिति में वह प्रतिग्रहणकर्ता की शक्ति के बाहर हो जाता है।

(ब) **जहाँ तक कि प्रतिग्रहणकर्ता का सम्बन्ध है**— प्रतिग्रहण की संसूचना जहाँ तक कि प्रतिग्रहणकर्ता का सम्बन्ध है उस समय पूर्ण होगी जबकि वह प्रस्थापक के ज्ञान में आ जाती है। इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण को जारी रखते हुए जब अ प्रस्थापक ब प्रतिग्रहणकर्ता का प्रतिग्रहण पत्र प्राप्त करता है तो जहाँ तक व प्रतिग्रहणकर्ता का सम्बन्ध है प्रतिग्रहण की संसूचना तब पूर्ण हो जाती है जब पत्र अ को मिल जाता है।

**Class -LL.B (HONS.) I SEM.**

**Subject - Law of Contract - I**

यदि संविदा दो व्यक्तियों में मध्य टेलीफोन द्वारा की जाय तो प्रस्थापना की संसूचना तब पूरी होती है जब वह प्रतिज्ञाग्रहीता को मिल जाती है सुनायी पड़ती है तथा प्रतिग्रहण की संसूचना तब पूर्ण होती है जब उसे प्रस्थापक स्पष्टतः और पूर्णतः सुन लेता है।

(3) अपखण्डन की संसूचना उस समय पूर्ण हो जाती है— (अ) जहाँ तक कि उसे करने वाले का सम्बन्ध है — जबकि वह उस व्यक्ति के पास भजने के लिए जिसने कि वह की गयी है पारेषण के अनुक्रम में ऐसे कर दी गयी है कि वह उस व्यक्ति की शक्ति से जो कि उसे करता है, बाहर हो गयी है।

(स) जहाँ तक कि उस व्यक्ति का सम्बन्ध है जिससे कि वह की जाती है— अपखण्डन की संसूचना उस व्यक्ति के सम्बन्ध में जिसको कि वह दी जाय, तब पूरी हो जाती है जबकि वह उसकी जानकारी में आ जाती है।

भारतीय तथा अंग्रेजी विधि में अन्तर— अंग्रेजी विधि तथा भारतीय विधि में यह अन्तर है कि अंग्रेजी विधि में प्रतिग्रहण की संसूचना उस समय पूर्ण हो जाती है जैसे ही उसको डाक में छोड़ दिया जाता है और विखण्डित न किया जाय परन्तु भारतीय संविदा अधिनियम के अन्तर्गत प्रतिग्रहण की सूचना प्रतिग्रहणकर्ता के सम्बन्ध में केवल उस समय ही पूर्ण होती है जबकि वह प्रस्तावकर्ता के पारस पहुँच जाती है। इस प्रकार अंग्रेजी विधि के अनुसार यदि प्रतिग्रहणकर्ता तार देकर प्रतिग्रहण का विखण्डन करना चाहे तो नहीं कर सकता क्योंकि उसके सम्बन्ध में स्वीकृति की संसूचना पूर्ण हो चुकी है परन्तु भारतीय विधि के अनुसार तार द्वारा स्वीकृति का विखण्डन तब तक किया जा सकता है जब तक कि प्रतिग्रहण—पत्र प्रस्तावक के पास न पहुँच गया हो। क्योंकि भारतीय विधि में स्वीकृतिकर्ता के सम्बन्ध में प्रतिग्रहण की संसूचना प्रस्तावक द्वारा स्वीकृति पत्र प्राप्त होने पर होती है।

प्रस्थापनाओं तथा प्रतिग्रहणों का अपखण्डन— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 5 में उल्लेख किया गया है कि 1 कोई प्रस्थापना, प्रतिग्रहण की संसूचना के प्रस्थापक के सम्बन्ध में पूर्ण हो जाने से पूर्व किसी समय अपखण्डित की जा सकेगी, किन्तु उसके पश्चात् अपखण्डित नहीं की जा सकेगी।”

2 “ कोई प्रतिग्रहण उस प्रतिग्रहण की संसूचना के प्रतिग्रहणकर्ता के सम्बन्ध में पूर्ण हो जाने से पूर्व किसी समय अपखण्डित नहीं किया जा सकेगा,“ अर्थात् प्रतिग्रहणकर्ता के सम्बन्ध में प्रतिग्रहण की संसूचना उस समय पूर्ण हो जाती है जबकि प्रतिग्रहणपत्र प्रस्थापक के ज्ञान में आ जाता है।

संविदा अधिनियम की धारा 5 उस समय के बारे में बतलाती है जिसके भोतर प्रस्थापना तथा उसकी स्वीकृति का अपखण्डन होना चाहिए। प्रस्थापना का विखण्डन उसी हालत में किया जा सकता है जब तक कि प्रतिग्रहण की संसूचना पूर्ण नहीं की जाती।

प्रतिग्रहण का अपखण्डन प्रतिग्रहणकर्ता पर बन्धनकारी होने से पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है। प्रतिग्रहण, प्रतिग्रहणकर्ता पर तब बाध्यकारी हो जाता है जबकि प्रतिग्रहण पत्र वस्तुतः प्रस्थापक के पास पहुँच जाता है।

प्रतिग्रहण का अपखण्डन— प्रतिग्रहणकर्ता बाध्यकारी होने के पहले प्रतिग्रहण का अपखण्डन किया जा सकता है। प्रतिग्रहण प्रतिग्रहीता पर तब बाध्यकारी हो जाता है। जबकि पत्रिग्रहण—पत्र वस्तुतः प्रस्थापक के पास पहुँच जाता है। अंग्रेजी विधि के अधीन प्रतिग्रहण के अपखण्डन की अनुमति नहीं दी जाती है। लेकिन भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 5 के अधीन पूर्वाक्त परिस्थितियों में प्रतिग्रहण का अपखण्डन हो सकता है। यदि प्रतिग्रहण को डाक पत्र में डालने के बाद भी प्रस्थापक को न मिले तो भी ऐसा प्रतिग्रहण—पत्र प्रस्थापक पर बाध्यकारी होता है। ज्यों ही पत्र डाक में डाल दिया जाता है, प्रस्थापक विमुख नहीं हो सकता है, उसके अपखण्डन का अधिकार उसको नहीं रह जाता।

प्रस्थापना के अपखण्डन की रीतियाँ— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 6 के अनुसार प्रस्थापना का अपखण्डन हो जाता है—

- (1) प्रस्थापक द्वारा दूसरे पक्षकार को अपखण्डन की सूचना के संसूचित किये जाने से।
- (2) ऐसी प्रस्थापना में उसकी स्वीकृति के लिए विहित समय के व्यपगत हो जाने से या यदि कोई समय इस प्रकार विहित नहीं है, तो स्वीकृति की संसूचना के बिना युक्तियुक्त समय के व्यपगत होने से,
- (3) प्रतिग्रहण की पूर्ववर्ती शर्तों को पूरा करने में प्रतिज्ञाग्रहीता की अफलता से
- (4) प्रस्थापक की मृत्यु या उन्मत्ता से यदि उनकी मृत्यु या उन्मत्ता का तथ्य स्वीकृति के पूर्व प्रतिज्ञाग्रहीता से ज्ञान में आ जाता है।

इस प्रकार धारा 6 स्वीकृति से पूर्व प्रस्ताव विखण्डन की विभिन्न रीतियों का वर्णन करती है।

(1) प्रस्थापक द्वारा दूसरे पक्षकार को अपखण्डन की सूचना के संसूचित किये जाने से— धारा 6 का खण्ड 1 विहित करता है कि किसी प्रस्थापना का अपखण्डन दूसरे पक्षकार को अपखण्डन की सूचना संसूचित करके किया जाता है। अपखण्डन केवल तभी प्रभावी होगा जबकि प्रतिग्रहण से पूर्व सूचना दे दी जाय। ऐसे अपखण्डन का समय धारा 4 में दिया गया है। धारा 4 के अनुसार जहाँ तक प्रस्थापक का सम्बन्ध है किसी प्रस्थापना एवं उसके प्रतिग्रहण की सूचना के पूर्ण होने से पहले अपखण्डन किया जा सकेगा, अर्थात् तब तक जब तक कि उसे प्रस्थापक के पास भेजे जाने के लिए पारेषण के अनुक्रम में इस प्रकार न रख दी जाय कि वह प्रतिज्ञाग्रहीता की शक्ति से बाहर हो जाय। अपखण्डन की सूचना पक्षकार को स्वयं प्रस्थापक द्वारा या उसके अभिकर्ता द्वारा संसूचित की जायगी और किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं। परन्तु अंग्रेजी विधि के अधीन प्रतिज्ञाग्रहीता को प्रस्थापक द्वारा किये गये प्रस्थापना के अपखण्डन का ज्ञान किसी भी सूत्र से होना चाहिए। यह जरूरी नहीं है स्वयं प्रस्थापक ही प्रस्थापना के अपखण्डन की सूचना दे।

(2) ऐसी प्रस्थापना में उसके प्रतिग्रहण के लिए विहित समय के बीत जाने से— प्रस्थापक किसी कार्य द्वारा अपनी प्रस्थापना को समाप्त करने के बजाय, प्रस्थापना करते समय ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसके प्रतिग्रहण के लिए समय की कोई परिसीमा निर्दिष्ट कर सकता है जिससे कि प्रतिज्ञाग्रहीता के प्रतिग्रहण के बिना ऐसे विहित किये गये समय के व्यतीत हो जाने पर प्रस्थापना का स्वतः अवसान हो जायगा। ऐसी परिस्थितियों में यह कहा जाता है कि प्रस्थापना समाप्त हो गयी।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

जहाँ प्रकट रूप से कोई समय निर्धारित किया गया हो, वहाँ कोई कठिनाई नहीं होती। परन्तु जहाँ कोई समय निर्धारित न किया गया हो वहाँ भी यह पूर्व धारणा की जा सकेगी कि प्रस्थापक अपनी प्रस्थापना पर अनिच्छत समय तक रुका न रहेगा, और समस्त परिस्थितियों में यही समझा जायेगा कि समुचित समय (Reasonable Time) के बीत जाने पर प्रस्थापना व्यपगत (Lapse) हा गयी।

(3) प्रतिग्रहण की पूर्ववर्ती शर्त को पूरा करने में प्रतिग्रहणकर्ता की असफलता से— यदि प्रस्थापना में कोई शर्त रखी गयी है, जिसके पूर्ण करने के पहले प्रतिग्रहणकर्ता प्रस्थापना का प्रतिग्रहण नहीं कर सकता ऐसी पूर्ववर्ती शर्त को पूरा करने में असफल हो जाने पर प्रस्थापना का स्वाभाविक रूप से अपखण्डन हो जायगा।

(4) प्रस्थापना की मृत्यु या उन्मत्तता से, उसकी मृत्यु या उन्मत्तता का तथा प्रतिग्रहण से पूर्व प्रतिग्रहणकर्ता के ज्ञान में आ जाता है— प्रस्थापना का अपखण्डन प्रस्थापक की मृत्यु या पागल होने से हो जाता है, किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि प्रतिग्रहण के पहले उसकी मृत्यु या पागलपन का तथ्य प्रतिग्रहणकर्ता के ज्ञान में आ गया हो।

“प्रस्ताव के लिये स्वीकृति का वही महत्व है जो बारूद से भरी गाड़ी के लिये जलती दियासलाई का” — कथन की विवेचना

ऐन्सन (Anson) ने लिखा है— “Acceptance is to offer what a lighted match is to a train of gun-powder. If produces something which can not be recalled or undone. But the powder may have laid till it becomes damp or the man who laid the train may remove it before the match is applied. So an offer may lapse for want of acceptance or be revoked before acceptance.”

अर्थात् “प्रस्थापना (प्रस्ताव) के लिये प्रतिग्रहण (स्वीकृति) बारूद भरी गाड़ी के लिये जलती हुई दियासलाई के समान है। यह कछ ऐसी चीज उत्पन्न करती है जो वापस नहीं की जा सकती या जिसे अकृति (undone) नहीं किया जा सकता। किन्तु बारूद तब तक रखी जा सकती है जब तक कि वह नम या आद्र न हो जाय अथवा वह व्यक्ति जिसने गाड़ी रखी है, वह दियासलाई लगाने के पहले उसे हटा सकता है।

इसलिये प्रतिग्रहण के अभाव में प्रस्थापना (प्रस्ताव) का हास हो सकता है अथवा प्रतिग्रहण के पहले उसका अपखण्डन हो सकता है।

प्रस्थापना जब तक प्रतिग्रहण न कर ली जाय तब तक कोई विधिक अधिकार (Legal right) नहीं उत्पन्न करती, किन्तु इसका हास (Lapse) हो सकता है अथवा इसका अपखण्डन किया जा सकता है। प्रतिग्रहण के पहले इसका अपखण्डन किया जा सकता है किन्तु ज्योही प्रस्थापना का प्रतिग्रहण हो जाता है, एक संविदा उत्पन्न हो जाती है और प्रस्थापक पर एक कर्तव्य आरोपित कर देती है तथा वह प्रस्थापना का अपखण्डन नहीं कर सकता है। फिर प्रस्थापना प्रतिग्रहण होने से एक प्रतिज्ञा हो जाती है।

प्रस्थापना कब प्रतिज्ञा में बदली जा सकती है—

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 7 उन परिस्थितियों का उल्लेख करती है जबकि प्रस्थापना प्रतिज्ञा में परिवर्तित की जा सकती है।

प्रस्थापना को प्रतिज्ञा में बदलने के लिये प्रतिग्रहण—

1. अत्यन्तिक तथा निरपेक्ष होना चाहिए।
2. किसी प्रायिक (usual) और युक्तियुक्त (reasonable) रीति में अभिव्यक्त होना चाहिए, जब तक कि, प्रस्थापना वह रीति विहित नहीं करती जिसमें कि उसे प्रतिग्रहित किया जाना है। यदि प्रस्थापना कोई रीति विहित नहीं करती है जिसमें कि उसे प्रतिग्रहित किया जाना है और प्रतिग्रहण ऐसी रीति में नहीं किया जाता है तो प्रस्थापक उसे प्रतिग्रहण संसूचित किए जाने के पश्चात युक्तियुक्त समय के भीतर आग्रह कर सकता कि उसकी प्रस्थापना विहित रीति में न कि अन्यथा प्रतिग्रहीत की जाये, किन्तु यदि वह वैसा करने में असफल होता है तो वह प्रतिग्रहण को प्रतिग्रहीत करता है।

इस धारा में यह उल्लेखित है कि प्रतिग्रहण किस प्रकार होना चाहिए। उपधारा (1) बिल्कुल स्पष्ट है— प्रतिग्रहण पूर्ण तथा शर्त रहित होना चाहिए। वह बिना शर्त तभी होगा जबकि प्रतिग्रहण में काई शर्त या नवीन प्रस्ताव प्रतिज्ञाग्रहीता व्दारा न किया गया हो। प्रतिग्रहण, प्रस्थापना का ही होना चाहिए। प्रस्थापना तथा प्रतिग्रहण की शर्तों में तनिक भी परिवर्तन होने से प्रतिग्रहण प्रस्थापना की प्रतिज्ञा का रूप धारण करने में रुकावट पैदा करता है। वस्तुतः सर्वानुसारी (qualified) प्रतिग्रहण या परिवर्तन के साथ किया गया प्रतिग्रहण एक नयी प्रस्थापना होता है जिसका कि संविदा होने के पहले असली प्रस्थापक व्दारा स्वीकार किया जाना जरूरी है।

प्रतिग्रहण का प्रायिक (usual) साधारण तथा समुचित रीति से होना जरूरी है—

धारा 7 का खण्ड (2) यह उपलब्ध करता है कि प्रस्थापना का प्रतिग्रहण प्रायिक, मामूली तथा समुचित रीति से किया जाना चाहिए। यह बात कि समुचित या प्रायिक रीति क्या है, प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। संसूचना का सामान्य व मान्य ढंग है— मौखिक रूप से शब्दों व्दारा और आचरण व्दारा और लेखबन्द्ध रूप से या तो स्वयं ले जाकर देना या डाक व्दारा भेजना, परन्तु शर्त यह है कि प्रतिग्रहण पूर्ण तथा शर्त रहित हो।

यदि प्रस्थापना के निर्बन्धों से यह स्पष्ट हो कि प्रतिग्रहण किसी विशेष रीति से किया जाय जैसे कि लेखबन्द्ध रूप से डाक व्दारा, तो किसी अन्य रूप से किया गया प्रतिग्रहण बाध्यकारी संविदा का गठन नहीं करेगा।

किसी कार्य का सर्वानुसारी प्रतिग्रहण की जाना या उन निर्बन्धों के विपरीत कार्य किया जाना प्रस्थापना को तब तक अमान्य कर देता है जब तक कि प्रस्थापक उससे राजी न हो जाय।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

प्रस्थापक वह ढंग विहित कर सकता जिस ढंग से प्रतिग्रहण किया जाय। यह प्रतिग्रहण देने की अवधि को सीमित कर सकता या प्रतिग्रहण के स्थान को निश्चित कर सकता। प्रस्थापना की रीति भी प्रस्थापना की एक शर्त हो सकती है। इस प्रकार यदि प्रस्थापना में यह उल्लेखित हो कि उत्तर तार द्वारा दिया जाय तो डाक द्वारा दिये गये उत्तर से संविदा का गठन न होगा।

शर्तों के पालन, या प्रतिफल की प्राप्ति द्वारा प्रतिग्रहण –

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 8 के अनुसार – प्रस्थापना की शर्तों का पालन या पारस्परिक प्रतिज्ञा के लिये जिस प्रतिफल की पेशकश प्रस्थापना के साथ की गयी हो उसका प्रतिग्रहण उस प्रस्थापना का प्रतिग्रहण है।

संविदा अधिनियम की धारा 8 ऐसे प्रतिग्रहणों का उल्लेख करती है जो प्रस्थापक को शब्दों या लेखों द्वारा सूचित नहीं की जाती। यथार्थ में कोई प्रस्थापना तब स्वीकृत समझी जाती है जबकि स्वीकृति सूचित कर दी जाय। विधि का सामान्य नियम है कि प्रस्थापना के प्रतिग्रहण की संसूचना प्रस्थापक को होना जरूरी है। चूंकि प्रतिग्रहण की संसूचना स्वयं प्रतिज्ञाग्रहीता के लाभ के लिए अपेक्षित होती है इसीलिए यदि वह चाहे तो स्वयं अपने को सूचना दिये जाने की अपेक्षा का परित्याग कर सकता है।

अतः निम्नलिखित दो अवस्थाएँ ऐसी हैं जिनमें सूचना से भिन्न अन्यथा भी स्वीकृति दी जा सकती है :

1. प्रस्थापना की शर्तों का पालन।
2. किसी प्रस्थापना में शामिल की गयी प्रतिज्ञा के लिए किसी प्रतिफल का प्रतिग्रहण।

1. **प्रस्थापना की शर्तों का पालन** – जब प्रस्थापक प्रस्थापना में की गयी ऐसी प्रतिज्ञा के प्रतिफल के रूप में कोई कार्य करने का आमन्त्रण करता है तो उस कार्य का वास्तविक रूप में किया जाना या पालन ही प्रस्थापना के प्रतिग्रहण के समान होता है, भले ही प्रस्थापक के पास कोई औपचारिक प्रतिग्रहण सूचित न किया गया हो। इसका सबसे अच्छा उदाहरण वह है जहाँ किसी खोये हुए सामान को प्राप्त करके वापस करने वाले व्यक्ति को पुरस्कार दिए जाने की प्रस्थापना होती है, या जहाँ विज्ञापन द्वारा सामान्य प्रस्ताव किया जाता है, या जहाँ अनिश्चित व्यक्तियों से प्रस्थापना की जाती है।

**हरभजन बनाम हरचरण** – इस वाद में अ ने एक खोये हुए बालक का पता लगाने के लिए इनाम की प्रस्तावना की और इनाम की प्रस्तावना से पूर्णरूप से अवगत ब ने लड़के का पता लगा लिया और प्रस्तावक को लड़के के बारे में सूचित किया। इस वाद में न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि ब द्वारा शर्त के पालन से स्वीकृति का गठन हुआ और एक बन्धनकारी संविदा हुई थी तथा ब इनाम पाने का अधिकारी था।

बाध्यकारी संविदा का गठन करने के लिए प्रतिज्ञाग्रहीता को प्रस्थापना का ज्ञान होना जरूरी है। प्रस्थापना की अज्ञानता की दशा में प्रस्थापना की शर्त के पालन मात्र से संविदा पूर्ण नहीं होती। इस संदर्भ में लालमन शुक्र बनाम गौरीदत्त का मामला उल्लेखनीय है।

2. **प्रतिज्ञा के लिए किसी प्रतिफल का प्रतिग्रहण** – जहाँ प्रस्थापक अपनी प्रस्थापना के साथ पारस्परिक प्रतिज्ञाओं के लिए जिसके लिए वह प्रतिज्ञाग्रहीता का आमन्त्रण करता है, किसी प्रतिफल की प्रस्थापना करता है और जहाँ प्रतिफल प्रतिज्ञाग्रहीता द्वारा प्रतिग्रहीत कर लिया जाता है, वहाँ प्रतिज्ञाग्रहीता द्वारा ऐसा प्रतिग्रहण प्रस्थापना प्रतिग्रहण के समान होता है, और प्रस्थापक को प्रस्थापना के औपचारिक प्रतिग्रहण की सूचना देने की जरूरत नहीं होती। वहाँ भी जहाँ कि प्रतिज्ञाग्रहीता उस सम्पत्ति का जो कि उसको प्रस्तावित की गयी हो, कब्जा लेता या प्रतिधारित करता है, ऐसे कब्जे में लिया जाना या ऐसे कब्जे का प्रतिधारण, किसी विरुद्ध आशय के अभाव में प्रतिग्रहण ही समान हो सकता।

**प्रस्थापना तथा प्रतिग्रहण के अभिव्यक्त होने की आवश्यकता** (Necessity of offer and acceptance to be expressed) यह आवश्यक नहीं है कि एक संविदा का गठन करने के लिए प्रस्थापना (offer) तथा प्रतिग्रहण (acceptance) दोनों को अभिव्यक्त (expressed) होना चाहिए। ऐसे बहुत से मामले हो सकते हैं जहाँ या तो प्रस्थापना (proposal) या प्रतिग्रहण (acceptance) दोनों ही बहुत से शब्दों में संसूचित नहीं किये जाते हैं। किन्तु पक्षकारों के आचरण से यह लक्ष्य किया जा सकता है, जैसे— स्वचलित तोलने की मशीन।

**अभिव्यक्त तथा विवक्षित प्रतिज्ञा में अन्तर (Difference between Expressed and Implied promise)** “जहाँ तक कि किसी प्रतिज्ञा की प्रस्थापना या उसका प्रतिग्रहण शब्दों में किया जाता है, वहाँ तक वह प्रतिज्ञा अभिव्यक्त कहलाती है। जहाँ तक ऐसी प्रस्थापना या प्रतिग्रहण शब्दों से अन्यथा किया जाता है, वहाँ तक वह प्रतिज्ञा विवक्षित कहलाती है।

धारा 9 के अनुसार एक प्रतिज्ञा अभिव्यक्त या विवक्षित हो सकती है। अभिव्यक्त प्रतिज्ञा (express promise) शब्दों में की जाती है। जबकि विवक्षित प्रतिज्ञा (implied promise) शब्दों से अन्यथा की जाती है। विवक्षित प्रतिज्ञा को करार के परिस्थितिक साक्ष (circumstantial evidence) से सिद्ध किया जाता है। संविदाएँ मिश्रित स्वरूप की भी हो सकती हैं, अर्थात् आंशिक रूप से अभिव्यक्त तथा कार्य एवं परिस्थितियों में आंशिक रूप से विवक्षित। अभिव्यक्त और विवक्षित प्रतिज्ञा के बीच भेद केवल उनको सिद्ध करने के ढंग से सीमित होता है। जब संविदा सिद्ध हो जाती है तो संविदा चाहे वह अभिव्यक्त हो अथवा विवक्षित, दोनों का समान प्रभाव होता है, दोनों एक जैसे वाद हेतुक को जन्म देते हैं।

विवक्षित प्रतिज्ञा आचरण से अभिव्यक्त हो जाती है जैसे किराये के लिए चलाये जाने वाले स्टीमर द्वारा बस के भीतर प्रवेश करने वाले व्यक्ति द्वारा। यदि कोई व्यक्ति किसी किराये पर चलने वाली गाड़ी में बैठ जाता है तो एक ओर गाड़ी के स्वामी की तरफ से उसको किसी रीति से कोई मूल्य चुकाने पर गाड़ी से ले जाने की प्रतिज्ञा प्रकट होती है।

**“इस कथन की व्याख्या कीजिए कि सभी संविदाएँ करार होती हैं परन्तु सभी करार संविदा नहीं होते।”**

“संविदा एक ऐसा करार है जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय होता है”

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

एक संविदा के लिये यह आवश्यक है कि एक करार होना चाहिए। बिना करार के संविदा नहीं हो सकता। अतः यह कहना सही है कि सभी संविदा करार होते हैं परन्तु यह कहना सही नहीं है कि सभी करार संविदा होते हैं। सभी करार संविदा नहीं हो सकते। भारतीय संविदा अधिनियम में संविदा की परिभाषा देते हुए बात स्पष्ट की गयी है। इस सबंध में धारा 2 (h) में बताया गया है कि – "Contract is an agreement enforceable by law." संविदा एक ऐसा करार है जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय होता है। इस परिभाषा की विवेचना करने से यह बात स्पष्ट होती है कि संविदा एक ऐसा करार है जिसको विधि द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सके। इसका अर्थ है ऐसा करार जो पक्षकारों में विधिक अधिकार एवं आभार/दायित्व का सृजन करता हो तथा जिनका विधिक मूल्य होता हो। करार तो बहुत से होते हैं लेकिन सभी करार संविदा नहीं होते। कुछ ऐसे करार भी होते हैं जो करार तो होते हैं परन्तु उनको विधि में प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता।

**संविदा के आवश्यक तत्व (Essentials of a valid Contract)** – संविदा के लिये इतना ही काफी नहीं है कि वह एक संविदा है बल्कि आवश्यक यह है कि एक वैध संविदा हाना चाहिए तथा कब एक संविदा वैध संविदा कहलायेगी इसको ज्ञात करने के लिये धारा 10 का अध्ययन किया जाना आवश्यक है जिसमें यह बताया गया है कि संविदा को वैध संविदा बनाने वाले आवश्यक तत्व क्या है? धारा 10 के अनुसार सभी करार संविदा है, यदि वे संविदा करने के लिए सक्षम पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति से वैधानिक (न्यायोचित) प्रतिफल के लिए वैधानिक उद्देश्य से किये जाते हैं तथा इस अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से शून्य (व्यर्थ) घोषित नहीं किये गये हैं। इनके अतिरिक्त वह करार लिखित तथा साक्षी द्वारा प्रमाणित अथवा रजिस्टर्ड होना चाहिए यदि भारत में प्रचलित किसी विशेष राजनियम द्वारा ऐसा किया जाना आवश्यक हो— और उस राजनियम (अधिनियम) को इस अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से निरसित (repeal) न कर दिया हो।

धारा 10 का पूर्णरूपेण विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि एक वैध संविदा के लिए निम्नलिखित तत्वों का होना अतिआवश्यक है :-

1. **करार (Agreement)** – एक वैध संविदा के लिए सबसे आवश्यक तत्व है करार का होना। संविदा की उत्पत्ति करार से होती है— अतः संविदा करार होना चाहिए। एक वैध करार के लिए प्रस्थापना तथा उसका प्रतिग्रहण होना जरूरी है। प्रस्थापना का अर्थ है संसूचित प्रस्थापना तथा प्रतिग्रहण का अर्थ है संसूचित प्रतिग्रहण। दोनों पक्षकारों के मन का समान होना जरूरी है।
2. **पक्षकार (Parties)** – पक्षकारों को संविदा करने के लिए सक्षम होना चाहिए। धारा 11 के अनुसार निम्नलिखित व्यक्ति संविदा करने के लिए सक्षम हैं –
  - (क) वयस्क व्यक्ति
  - (ख) स्वरक्षित का व्यक्ति
  - (ग) वह व्यक्ति जो विधि के अधीन संविदा करने के लिए अयोग्य न हो गया हो।  
अतः धारा 11 के अनुसार, ऐसा व्यक्ति जो अवयस्क है अथवा अस्वस्थ मरिटिष्ट को है अथवा कानून द्वारा अयोग्य घोषित कर दिया गया है, संविदा करने में अक्षम है। ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया करार शून्य होता है।
3. **स्वतंत्र सहमति (Free Consent)** – प्रत्येक करार पक्षकारों की स्वतंत्र सम्मति से किया जाना आवश्यक है (The agreement must have been made with the free consent of the parties)
 

"सम्मति से अभिप्राय है पक्षकारों का किसी एक बात पर एक ही भाव में सहमत होना। एक पक्षकार की सम्मति | (1) उत्पीड़न (बल प्रयोग coercion) या (2) असम्यक असर (undue influence), या (3) कपट (fraud), या (4) मित्या— व्यपदेशन (Misrepresentation), या (5) भूल (mistake) द्वारा नहीं प्राप्त की जानी चाहिए।"
4. **विधिपूर्ण प्रतिफल** – वैध संविदा का एक अन्य आवश्यक लक्षण यह है कि करार विधिपूर्ण प्रतिफल के लिए होना चाहिए। यदि करार का प्रतिफल विधिपूर्ण (Lawful) नहीं होता तो करार शून्य होगा।
5. **न्यायोचित उद्देश्य** – वैध संविदा के लिए यह भी आवश्यक है कि वह न्यायोचित उद्देश्य के लिए किया गया होना चाहिए। यदि करार का उद्देश्य न्यायोचित नहीं होगा तो करार शून्य होता है।

धारा 23 के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से किसी करार का प्रतिफल अथवा उद्देश्य अवैध माना जाता है और करार (void) शून्य होता है –

- (i) जबकि यह कानून द्वारा निषिद्ध हो (when it is forbidden by law)।
- (ii) जबकि ऐसा होने से वह किसी कानून की व्यवस्थाओं को भंग कर देगा (if permitted it would defeat the provisions of any law)।
- (iii) जबकि उद्देश्य या प्रतिफल कपटपूर्ण हो (when it is fraudulent)।
- (iv) जबकि यह किसी व्यक्ति को या उसकी सम्पत्ति को चोट पहुँचाने के लिए है (when it involves or implies injury to the person or property of another)।
- (v) जबकि यह अनैतिक हो (when it is immoral)।
- (vi) जबकि यह लोकनीति के विरुद्ध हो (when it is opposed to public policy)।

निम्नलिखित प्रकार के करार लोकनीति के विरुद्ध माने जाते हैं तथा उनका उद्देश्य एवं प्रतिफल भी लोकनीति के विरुद्ध माना जाता है –

- गलत प्रकार से वाद चलाने का करार,
- कमीशन पर विवाह करने की संविदा
- अपराधनीय वादों के संचालन में रुकावट डालने के करार,
- न्यायिक प्रशासन में हस्तक्षेप के करार,

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

- सरकारी पदों के संबंध में दलाली के करार,
  - वाद व्यवसाय के करार,
  - लोक अधिकारी के कार्य के विरुद्ध हित रखने के करार,
  - सरकारी नौकरी प्राप्त करने के करार।
6. करार का शून्य न होना (Agreement not to be void) कोई करार तभी विधिमान्य संविदा हो सकता है यदि वह अभिव्यक्त रूप से शून्य घोषित न किया गया हो। भारतीय संविदा अधिनियम द्वारा निम्नलिखित करार शून्य घोषित किये गये हैं –
- जहाँ करार के दोनों पक्षकार किसी ऐसे तथ्य की भूल में हों जो करार के लिए जरूरी हा। (धारा 20)
  - प्रत्येक करार, जिसका उद्देश्य या प्रतिफल विधि विरुद्ध है। (धारा 23)
  - प्रत्येक करार, जिसका प्रतिफल तथा उद्देश्य भागतः विधि विरुद्ध हो। (धारा 24)
  - बिना प्रतिफल का करार (धारा 25)
  - अवयस्क से भिन्न किसी व्यक्ति के विवाह के अवरोधार्थ करार (धारा 26)
  - व्यापार के अवरोधार्थ करार (धारा 27)
  - न्यायिक कार्यवाहियों के अवरोधार्थ करार (धारा 28)
  - ऐसा करार जिसका अर्थ निश्चित नहीं है या निश्चित किये जाने के बाग्य नहीं है। (धारा 29)
  - बाजी लगाने की अनुरीति के करार। (धारा 30)
  - असभ्व घटनाओं पर अश्रित करार। (धारा 36)
  - असभ्व कार्य करने का करार। (धारा 56)
7. विधि की दूसरी आवश्यकताएँ (Other legal requirements) – यदि किसी नियम के अनुसार कोई करार लिखित व प्रमाणित होना चाहिए और उसकी रजिस्ट्री की आवश्यकता है तो वहाँ उसका लिखित एवं प्रमाणित होना आवश्यक है। इन आवश्यकताओं को पूरा किये बिना वह करार अवैध होता है। इस तरह के करार के निम्नलिखित उदाहरण हैं :-
- (अ) कालबाधित कर्ज को अदा करने का करार, अथवा  
 (ब) अचल सम्पत्ति को हस्तान्तरित करने का करार, अथवा  
 (स) मतभेद उत्पन्न होने पर मामले को पंच-निर्णय में देने का करार।  
 ये ऐसे करार हैं जिन्हें विधिक रूप में लागू कर सकने के पूर्व उसे लिखित तथा पंजीकृत होना चाहिए।

### संविदा हेतु सक्षमता (Competency for contract)

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 10 के अनुसार एक करार को वैध संविदा बनाने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि करार के पक्षकारों में संविदा करने की क्षमता विद्यमान हो अर्थात् वे संविदा करने में सक्षम हो। यदि ऐसा नहीं होगा तो करार व्यर्थ (शून्य) माना जायेगा। अतः इस बात को स्पष्ट करने के लिए धारा 11 उन व्यक्तियों का वर्णन किया गया है जो संविदा करने के लिए सक्षमहैं।

धारा 11 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जो वयस्क है, स्वस्थचित्त का है तथा किसी विधि द्वारा संविदा करने से निरहित (disqualify) नहीं कर दिया गया है, संविदा करने के लिए सक्षम है। "Every person is competent to contract who is of the age of majority according to the law to which he is subject and who is of sound mind, and is not disqualified from contracting by any law to which he is subject."

धारा 11 के अनुसार – निम्नलिखित व्यक्ति संविदा करने के लिए सक्षम नहीं हैं –

- I. अवयस्क
- II. विकृत चित्त का व्यक्ति
- III. वह व्यक्ति जो उस विधि के द्वारा जिसके वह अधीन है, संविदा करने के लिए अनर्हीकृत नहीं है।

(1) अवयस्क कौन है ? भारतीय वयस्कता अधिनियम की धारा 3 के अनुसार कोई व्यक्ति 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर वयस्क समझा जाता है, किन्तु यदि उसके सम्पत्ति और शरीर की सुरक्षा के लिए न्यायालय द्वारा संरक्षक नियुक्त किया गया है तो वह 21 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर ही वयस्क समझा जायगा। अंग्रेजी विधि के अधीन 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर वयस्क माना जाता है।

अवयस्क द्वारा करार – धारा 11 की नकारात्मक प्रतिपादना (Negative preposition) यह उपबन्ध करती है कि अवयस्क संविदा करने के लिए सक्षम नहीं है। इस नकारात्मक प्रतिपादन का अर्थ दो प्रकार से किया जा सकता है, अर्थात् –

(1) अवयस्क का करार शून्य होता है। अवयस्क अपनी संविदा के आधार पर न तो स्वयं वाद ला सकता है, न ही उसके खिलाफ वाद लाया जा सकता है और संविदा किसी भी ढंग से अनुसमर्थित (Ratified) करने योग्य नहीं होती।

(2) अवयस्क संविदा करने के लिए इस अर्थ में अक्षम होता है कि वह संविदा से उत्पन्न दायित्व के अधीन नहीं होता, यद्यपि दूसरा पक्षकार इस प्रकार दायित्वाधीन रहता है। ऐसी दशा में संविदा शून्यकरणीय (Voidable) होती है और वयस्कता प्राप्त कर लेने पर पूर्वोक्त अवयस्क द्वारा संविदा का अनुसमर्थन – किया जा सकता है। संयुक्त रूप से वयस्क तथा अवयस्क द्वारा की गयी संविदा पूर्णतः वयस्क के विरुद्ध प्रवर्तनीय होती है, अवयस्क के विरुद्ध नहीं।

### शून्य संविदाएँ (Void contracts)

धारा 11 के अनुसार एक अवयस्क संविदा करने के लिए सक्षम नहीं है। परन्तु भारतीय संविदा अधिनियम में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि यदि अवयस्क संविदा करता है तो उसकी प्रकृति क्या होगी। अर्थात् यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि यदि अवयस्क संविदा करता है तो उसकी प्रकृति क्या होगी। अर्थात् यह स्पष्ट नहीं है कि ऐसी संविदा शून्य होगी या शून्यकरणीय। इस विषय पर सन् 1903 तक भारत के उच्च न्यायालयों में बहुत मतभेद था, परन्तु 1903 में प्रिवी काउन्सिल ने अन्तिम रूप से इस मतभेद का अन्त कर दिया तथा मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष के मामले में प्रिवी काउन्सिल ने यह निर्णय दिया कि अधिनियम के अनुसार यह आवश्यक है कि संविदा करने के लिए सक्षम हो, और यदि वह सक्षम नहीं है तो वह इस अधिनियम के अंतर्गत संविदा नहीं कर सकता है। अवयस्क के साथ की गयी संविदा पूर्णतः शून्य होती है। इस वाद के तथ्य इस प्रकार है –

इस वाद में प्रतिवादी एक अवयस्क था जिसने धर्मोदत्त नामक व्यक्ति से 20हजार रुपया प्राप्त करने के लिए अपनी सम्पत्ति गिरवी रख दी। करार के समय धर्मोदत्त के एजेंट केदारनाथ (जिसके द्वारा यह करार किया गया) को यह सूचना मिली कि प्रतिवादी अवयस्क है अतः वह विलेख लिखने का अधिकारी नहीं है। इस सूचना की प्राप्ति के पश्चात भी केदारनाथ के प्रतिवादी से वस्त्र का लेख लिखा लिया। तत्पश्चात अवयस्क की ओर से उसकी माता तथा अभिभावक ने धर्मोदत्त के विरुद्ध दावा दायर कर दिया तथा न्यायालय से यह प्रार्थना की कि उस विलेख को रद्द कर दिया जाय। निम्न न्यायालय ने वादी की ओर से उक्त प्रार्थना को स्वीकर कर लिया। अपील न्यायालय ने उक्त आदेश के विरुद्ध अपील को खारिज कर दिया। तत्पश्चात एक अपील प्रिवी-काउन्सिल में दायर की गयी। इस समय तक धर्मोदत्त की मृत्यु हो चुकी थी और उसका स्थान उसकी विधवा पत्नी मोहरी बीबी ने ग्रहण कर लिया।

अपीलार्थी की ओर से यह कहा गया कि न्यायालय को प्रतिवादी की ओर से तर्क देते समय यह भी आदेश करना चाहिए था कि 10,500/- रुपये जो कि उसने अपीलार्थी से प्राप्त किये थे उन्हें लौटायें। उन्होंने अपने तर्क में संविदा अधिनियम की धारा 64 तथा 65 तथा विशिष्ट अनुपालन अधिनियम (Specific Relief Act) की धारा 41 का हवाला दिया। न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि जहाँ तक संविदा विधि की धारा 64 व 65 का सवाल है वह तभी लागू की जा सकती है जबकि संविदा के पक्षकार सक्षम हों। जहाँ तक विशिष्ट अनुपालन अधिनियम की धारा 41 का प्रश्न है न्यायालय ने कहा कि न्यायालय को यह विवेकाधिकार है कि वह ऐसे मामलों में उस पक्षकार को जिसन ऐसी संविदा में लाभ उठाया है उस लाभ को वापस करने के लिये आदेश दें। यह बात अवयस्क पर भी लागू होती है। परन्तु इस वाद में न्यायालय ने ऐसा करना उचित नहीं समझा क्योंकि धर्मोदास घोष को ऋण देते समय इस बात का ज्ञान था कि वह अवयस्क है। यह अभिनिधारित किया गया कि संविदा करने के लिए पक्षकार सक्षम होने चाहिए और यह अधिनियम स्पष्टतया उपबन्ध करता है कि कोई व्यक्ति जो बाल्यावस्था या अवयस्कता के कारण संविदा करने के लिए अक्षम हो, अधिनियम के अर्थ में संविदा नहीं कर सकता और वह आक्षेपित संविदा शून्य है।

**आयु के संबंध में दुर्व्यपदेशन** – उस समय क्या रिथित होगी जब अवयस्क दुर्व्यपदेशन द्वारा अपने को वयस्क बताते हुए संविदा करता है? इस बात पर भारतीय तथा अंग्रेजी विधि में अन्तर है, अंग्रेजी विधि के अधीन यदि अवयस्क दुर्व्यपदेशन करके अपने को वयस्क प्रदर्शित करते हुए कर्ज लेता है तो वह ऐसे कर्ज को वापस करने के लिए बाध्य नहीं है किन्तु यदि भारत में कोई अवयस्क इस प्रकार से दुर्व्यपदेशन करके कर्ज लेता है तो ऐसे व्यक्ति को अपनी अवयस्कता के अभिवचन को लेने से रोका नहीं जायेगा। किन्तु साम्या के आधार पर उसे दूसरे पक्षकार को क्षतिपूर्ति के लिए आक्षेपित किया जायेगा। इसके सिद्ध करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जो अवयस्कता का अभिवचन लेता है क्योंकि सामर्थ्य नियम है तथा असमर्थता अपवाद है।

यदि कोई अवयस्क कपटपूर्ण या धोखा देकर कोई सम्पत्ति प्राप्त करता है तो उसे उस सम्पत्ति को वापस करके के लिए बाध्य किया जा सकता है। यह सिद्धांत प्रमुख अंग्रेजी वाद लेजली बनाम शीलए 1914 प्रतिपादित किया गया था परन्तु खान गुल बनाम लाखनसिंह (1928) में लेजली बनाम शील का सिद्धांत लागू नहीं किया गया। इसमें मुख्य न्यायाधीश शादीलाल ने निर्णय देते हुए कहा कि सम्पत्ति तथा धन लौटाने में केवल यहीं अंतर है कि सम्पत्ति को पहचाना जा सकता है और धन को सामान्यतः नहीं पहचाना जा सकता है। इस सिद्धांत के औचित्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि यह बड़ी अन्यायपूर्ण बात होती है कि अवयस्क न केवल सम्पत्ति अपने पास रखें वरन् वह धन भी रख लें जिसे उसने कपट द्वारा प्राप्त किया है।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 115, जिसके अनुसार “जब कोई व्यक्ति अपने घोषणा, कार्य या कार्य विलोप इस प्रकार करता है कि कोई अन्य व्यक्ति उसे सत्य मानकर तथा उस पर विश्वास करके कोई कार्य करता है तो ऐसे कार्य या कार्य लोप करने वाले या उसके प्रतिनिधियों को ऐसी बात की सत्यता का विरोध करने का अधिकार नहीं है, अवयस्क के मामले में लागू नहीं की जा सकती है।”

### विकतचित्त व्यक्ति द्वारा संविदा

वे व्यक्ति, जिसमें मानसिक शक्ति का अभाव है, वैध संविदा नहीं कर सकते। एक व्यक्ति में मानसिक न्यूनता पागलपन, जड़ता या शराब पीने की आदत के कारण हो सकती है। इसलिए अस्वस्य चित्त (unsound mind) का कोई व्यक्ति यदि संविदा करता है तो वह शून्य होती है। (कमोलाराम बनाम कौराराम राम, (1906))। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 12 इस विषय में व्यवहृत करती है, जो इस प्रकार है— एक व्यक्ति संविदा करने के प्रयोजन के लिए स्वस्थचित्त कहा जाता है, यदि उस समय जबकि वह इसे करता है, वह इसे समझने के लिए और अपने हित पर पड़ने वाले इसके प्रभाव के बारे में युक्तिमूलक निर्णय (rational judgement) करने के लिए योग्य हो।

“कोई व्यक्ति, जो सामान्यतया (unsound mind) का है, किन्तु कभी-कभी स्वस्थचित्त का हो जाता है, उस समय संविदा कर सकता है जबकि वह स्वस्थचित्त को हो।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

"कोई व्यक्ति, जो सामान्यतः स्वस्थचित्त को हो किन्तु कभी कभी विकृतचित्त का हो जाता है, उस समय संविदा नहीं कर सकता जबकि वह विकृतचित्त का रहता है।"

उपर्युक्त धारा से स्पष्ट है कि स्वस्थचित्त का परीक्षण यह है कि संविदा करने वाला पक्षकार इस योग्य हो कि संव्यवहार को समझ सके और अपने हित पर पड़ने वाले इसके प्रभाव के बारे में युक्तिमूलक (rational judgement) संविदा करते समय, कर सके।

### विधि द्वारा संविदा करने के लिए अयोग्य घोषित व्यक्ति

भारत में दिवालिया (Insolvent) विदेश शत्रु (भारत तथा उनके देश में युद्ध चलने के दौरान), विदेशी सम्प्रभु (Foreign Sovereign), सजा काटते हुए अपराधी भारतीय विधि के अंतर्गत संविदा करने के अक्षम माने गये हैं।

**अवयस्कों द्वारा संविदाएँ (Contracts by minors)** – भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 11 पक्षकारों के संविदा करने की सक्षमता के बारे में विवेचना करती है इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, जो कि उस विधि के अनुसार जिसके कि वह अध्यधीन है, वयस्कता की आयु का है, संविदा करने के लिए सक्षम है। वयस्कता अधिनियम 1875 (Majority Act, 1875) द्वारा वयस्कता की आयु की अवधारण किया जाता है। इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक अवयस्क जब वह 18 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेता है तो वयस्क हो जाता है, परन्तु जब किसी अवयस्क का या उसकी सम्पत्ति का अभिभावक नियुक्त कर दिया जाता है तो वयस्कता की अवधि 21 वर्ष हो जाती है।

अवयस्क द्वारा संविदा शून्य है – कोई भी अवयस्क संविदा करने के लिए पूर्णतया अक्षम है। यदि वह संविदा करता है तो ऐसी दशा में उसका करार शून्य होता है। अवयस्क संविदा के आधार पर न तो स्वयं वाद ला सकता है, न ही उसके खिलाफ वाद लाया जा सकता है और संविदा किसी भी रीति के अनुसमर्थित (ratification) किये जाने योग्य नहीं होती।

मोहरी बीबी बनाम धरमेंद्रास घोष, ILR (1903) के मामले में भी प्रिया काउन्सिल ने यह कहा है कि अवयस्क द्वारा की हुई संविदा शून्य होती है न कि शून्यकरणीय। इसलिए करार के अंतर्गत जो प्रतिज्ञा अवयस्क द्वारा की जाती है उसका पालन करने का दायित्व उस पर नहीं होता है। इसी प्रकार करार के अंतर्गत अवयस्क द्वारा जो रकम ली जाती है उसी अदायगी का दायित्व भी अवयस्क पर नहीं होता है।

**अवयस्क की संविदा का विशिष्ट पालन** – चूंकि अवयस्क द्वारा की गयी संविदा पूर्णरूपेण शून्य होती है, अतः ऐसी संविदा का विशिष्ट पालन (Specific Performance) भी नहीं हो सकता। इतना ही नहीं यदि अवयस्क के स्थान पर संविदा उसके अभिभावक ने की है तो भी संविदा का विशिष्ट अनुपानल अवयस्क के विरुद्ध या अवयस्क द्वारा नहीं किया जा सकता, किन्तु यदि संविदा (1) अवयस्क को संविदा – बाध्य करने में सक्षम संरक्षक द्वारा तथा (2) अवयस्क के लाभ के लिए की गयी हो तो वह अवयस्क द्वारा या अवयस्क के विरुद्ध विनिर्दिष्ट प्रवर्तित करायी जा सकती है।

**अवयस्क पर अदायगी का दायित्व नहीं होता है** – जैसा कि मोहरी बीबी बनाम धर्मेंद्रास घोष के वाद में प्रिया काउन्सिल में यह निर्धारित किया है कि अवयस्क की संविदा शून्य होती है न कि शून्यकरणीय, इसलिए इस प्रकार की संविदा के अंतर्गत यदि कोई व्यक्ति अवयस्क हो तो रूपया उधार देता है तो वह अवयस्क को रूपये की अदायगी के लिए बाध्य नहीं कर सकता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी अवयस्क की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है या ऐसे व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है जो कि अवयस्क पर बन्धनकारी है तो उस व्यक्ति को धारा 68 के अंतर्गत उस अवयस्क की सम्पत्ति से क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार होता है।

**धारा 68 के अनुसार** – यदि संविदा करने में असमर्थ व्यक्ति को जिसका संपालन करने के लिए वैध रूपेण बाध्य है, उसकी हैसियत के अनुकूल आवश्यक वस्तुएँ किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रदाय की जाती है तो वह व्यक्ति जिसने ऐसे प्रदाय किये हैं ऐसे असमर्थ व्यक्ति की सम्पत्ति में से अपनी भरपाई कराने के लिए हकदार है।

**अवयस्क की संविदा का अनुसमर्थन** – अवयस्क के साथ किया गया करार शुरू से ही शून्य होता है (void ab initio) और इसलिए बाद में उसके द्वारा वयस्क हो जाने पर किये गये उसके अनुसमर्थन से वह करार मान्य नहीं हो जाता। वह करार विधि में अकृत तथा अप्रवर्तनीय था। यदि कोई अवयस्क अपनी अवयस्कता के दौरान कोई वचन-पत्र (Promissory-note) निष्पादित करता है और फिर अवयस्क हो जाने पर उसका नवीनीकरण करता है तो नवीनीकृत वचन-पत्र शून्य होगा, भले ही उसका नवीनीकरण उसके वयस्क हो जाने के बाद ही किया गया हो।

### स्वतंत्र सहमति (Free consent)

सम्मति संविदा का एक आवश्यक तत्व है, जैसा कि संविदा अधिनियम की धारा 10 में कहा गया है कि वे सभी करार संविदा होते हैं जो सक्षम पक्षकारों द्वारा अपनी स्वतंत्र सम्मति द्वारा किए जाते हैं, उनका प्रतिफल तथा उनका उद्देश्य वैध होता है तथा उन्हें किसी विधि द्वारा शून्य घोषित नहीं किया गया है।" इस प्रकार की संविदा के लिए स्वतंत्र सहमति का होना जरूरी है। अब प्रश्न उठता है स्वतंत्र सम्मति क्या है? यह जानने के लिए हमें सम्मति की विवेचना करनी पड़ेगी। सम्मति की परिभाषा भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 13 में दी गयी है जो इस प्रकार है –

"जबकि दो या अधिक व्यक्ति एक ही बात पर एक ही भाव से करार करते हैं तब उनके बारे में कहा जाता है कि वे सम्मत हुए।"

इस प्रकार धारा 13 सम्मति की परिभाषा करती है जिसका अर्थ है कि एक ही बात पर एक से ही भाव से सहमत होना। 'एक ही बात' का अर्थ है – तथ्यों या करार की प्रतिज्ञाओं के करार की सम्पूर्ण विषय-वस्तु चाहे वह पूर्ण रूप में हो अथवा आंशिक रूप में। पद 'एक ही बात पर' का अर्थ करार की आन्तरिक विषयवस्तु से लगाया जाता है। इसलिए जहाँ दोनों पक्षकार युक्तियुक्त ढंग से व्यवहार करते हुए उस चीज को भिन्न-भिन्न अर्थ में समझते हैं वहाँ वास्तविक सहमति नहीं होती।

### **मौलिक भूल (Original Mistake)**

पक्षकारों को एक-सी बात पर एक ही भाव में करार करना चाहिए, केवल तभी पक्षकारों का सम्मत होना कहा जाता है। अर्थात् संविदा के पक्षकारों की पहचान, विषय-वस्तु एवं संव्यवहार की प्रकृति के संबंध में दोनों पक्षकारों के मन में किसी प्रकार की विभिन्नता का नहीं होना ही सम्मति अथवा सम्मति है। जहाँ पक्षकारों के दिमाग में भिन्न-भिन्न बातें मौजूद रहती हैं अथवा जब वे एक ही चीज को भिन्न प्रकार से समझते हैं तो वहाँ वास्तविक सम्मति नहीं होती है। कुछ मामलों में ऐसा हो सकता है कि सम्मति भूल के कारण दी गयी रहती है और भूल इतनी पूर्ण हो सकती है कि वह 'एक ही बात पर' किसी वास्तविक करार के निर्माण को रोक देती है, अर्थात् ऐसे करार को शून्य कर सकती है। ऐसी मौलिक भूल निम्नलिखित से संबंधित हो सकती है –

- (अ) पक्षकार की पहचान, या
- (ब) संव्यवहार का स्वरूप, या

(स) करार की विषयवस्तु

(अ) पक्षकार की पहचान के विषय में भूल (**Mistake to the identity of the party**) – जहाँ किसी पक्षकार या व्यक्ति के पहचान के सबंध में जिससे करार किया गया है, भूल हो गयी है तो करार रद्द हो जायेगा। कोई भी अभिकर्ता अपने मालिक की तरफ से प्रतिग्रहण कर सकता है तथा ऐसे प्रतिग्रहण से मालिक बाध्य होगा। किसी पर्वानशीन स्त्री के मामले में यह सिद्ध करने का भार कि उसके व्यापार स्वतंत्र रूप से सम्मति दी गयी थी, उस व्यक्ति पर होगा, जो ऐसा अभिवचन करता है। किसी संविदा में इस तथ्य का कि उस संविदा में लिखी गयी भाषा निष्पादन के समक्ष में नहीं आयी अर्थ यह नहीं होता कि वह व्यक्ति उस संविदा की अन्तर्निहित विषय-वस्तु से अनभिज्ञ था।

**कण्डी बनाम लिंडसे (1878)** – ब्लेकिरन (Bleckiron) और ब्लेकर्न (Blenkarn) के नाम में जो समानता है उसका फायदा उठाते हुए ब्लेकर्न ने जो कि एक ठग था लिण्डसे एण्ड कम्पनी को पत्र लिख कर कुछ माल मँगाया। कम्पनी ने उसके आर्डर को ब्लेकिरन एण्ड कम्पनी का आर्डर समझ लिया, (क्योंकि आदेश-पत्र पर किया हुआ हस्ताक्षर ब्लेकिरन के हस्ताक्षर के समान लगता था) जो एक प्रतिष्ठित फर्म थी, तथा माल का परिदान ब्लेकर्न को कर दिया। ब्लेकर्न ने यह सामान कण्डी को बेच दिया और लिण्डसे एण्ड कम्पनी को माल के लिए कुछ भी नहीं दिया। लिंडसे एण्ड कम्पनी ने कण्डी के विरुद्ध दावा किया। निर्णय में कहा गया कि संविदा करने वाले पक्षकारों के सबंध में भूल के कारण ब्लेकर्न तथा लिण्डसे एण्ड कम्पनी में “एक ही बात पर एक भाव में” कोई करार नहीं था और इसलिए संविदा शून्य था तथा ब्लेकर्न को माल में कोई हक प्राप्त नहीं हुआ था जिसे वह कण्डी एण्ड कम्पनी को बेच देता। चैकिं कण्डी एण्ड कम्पनी को उस माल से कोई हक प्राप्त नहीं था इसलिए वे माल को वापस करने या उसकी एवज में धन वापस करने के लिए जिम्मेदार थे।

(ब) संव्यवहार के स्वरूप के विषय में भूल (**Mistake as to nature of transaction**) – जहाँ एक अभिव्यक्त करार के पक्षकार संव्यवहार के स्वरूप में जिसके लिए संविदा की गयी है, भूल रखते हो तो मामला धारा 13 के अंतर्गत असफल होगा। यह सामान्यतया कपट से उत्पन्न होता है। जब एक व्यक्ति, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या न हो, एक दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने के लिए प्रलोभित किया जाता है जो कि उस दस्तावेज से अनिवार्यतः भिन्न होता है जिस पर हस्ताक्षर करने का वह विचार करता था जबकि वह हस्ताक्षर कर रहा था तो ऐसा दस्तावेज शून्यता (nullity) है।

**पक्षकारों की समान सहमति (Parties ad idem)** – संविदा की उत्पत्ति के लिए यह अनिवार्य है कि दोनों पक्षकार समान वस्तु पर समान अर्थ में सहमत हों। जब वे समान वस्तु पर समान अर्थ में सहमत होते हैं तब उसे पक्षकारों की समान सहमति (ad idem) कहा जाता है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 14 में स्वतंत्र सहमति की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

सहमति स्वतंत्र तब कहीं जाती है जब सम्मति —

- (1) धारा 15 में यथा परिभाषित उत्पीडन से, या
- (2) धारा 16 में यथा परिभाषित असम्यक असर से, या
- (3) धारा 17 में यथा परिभाषित कपट से, या
- (4) धारा 18 में यथा परिभाषित मिथ्या व्यपदेशन से, या

(5) धाराओं 20, 21 और 22 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए भूल से, न करायी हो तब उसके बारे में कहा जाता है कि वह स्वतंत्र है। जबकि सम्मत ऐसे उत्पीडन, असम्यक असर, कपट, मिथ्या व्यपदेशन या भूल के अस्तित्व से अन्यथा न दी गयी होती तब उसके बारे में यह कहा जाता है कि वह ऐसे करायी गयी है।

इस प्रकार सहमति उस समय स्वतंत्र कही जाती है जब वह (1) उत्पीडन (बल प्रयोग) या (2) असम्यक असर (अनुचित प्रभाव) या (3) कपट या (4) मिथ्या व्यपदेशन या (5) भूल से न की गयी हो। यदि सहमति उपर वर्णित परिस्थितियों में दी गयी है तो वह संविदा शून्यकरणीय (Voidable) होती है, उस पक्षकार के विकल्प पर जिसकी सहमति इस प्रकार प्राप्त की गयी। यदि सहमति में दोनों पक्षकारों ने भूल की है तो वह शून्य (Void) होती है।

(II) **उत्पीडन (Coercion)** – साधारण बोलचाल की भाषा में उत्पीडन शब्द का शाब्दिक अर्थ है जबर्दस्ती।

वैध संविदा के लिए स्वतंत्र सहमति का होना आवश्यक है लेकिन यदि प्रस्ताव पर दूसरे पक्षकार की सहमति उत्पीडन से ली गयी है तो सहमति स्वतंत्र नहीं मानी जायेगी।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 15 में उत्पीडन की परिभाषा निम्नांकित शब्दों में की गयी है—

“उत्पीडन, इस आशय से कि किसी व्यक्ति से कोई करार कराया जाये, कोई ऐसा कार्य करना या करने की धमकी देना है जो भारतीय दण्ड संहिता द्वारा निषिद्ध है अथवा किसी व्यक्ति पर चाहे वह कोई हो, प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए किसी सम्पत्ति का विधि-विरुद्ध निरोध करना या निरोध करने की धमकी देना है।”

**स्पष्टीकरण** – यह तत्वहीन है कि जिस स्थान पर उत्पीडन का प्रयोग किया जात है वहाँ भारतीय दण्ड संहिता प्रवृत्त है या नहीं।

- (1) यदि दूसरा पक्ष भारतीय दण्ड विधान में लिखा हुआ अपराध इस उद्देश्य से करता है कि सहमति प्राप्त हो जाय, अथवा
- (2) यदि दूसरा पक्ष भारतीय दण्ड विधान में लिखा हुआ अपराध करने की धमकी इस उद्देश्य से देता है कि सहमति प्राप्त हो जाय, अथवा
- (3) यदि दूसरा पक्ष अनाधिकृत रूप से कोई सम्पत्ति रोक लेता है इस उद्देश्य से कि सहमति प्राप्त हो जाय, अथवा
- (4) यदि दूसरा पक्ष अनाधिकृत रूप से कोई सम्पत्ति रोक लेने की धमकी इस उद्देश्य से देता है कि सहमति प्राप्त हो जाय।

तो ऐसा कार्य उत्पीडन कहा जाता है।

**उदाहरण**

क महासमुद्र में एक अंग्रेजी पोत पर ऐसे कार्य द्वारा जो कि भारतीय दण्ड संहिता के अधीन आपराधिक अभित्रास है, ख के लिए करार करता है।

उसके पश्चात क संविदा भंग के लिए कलकत्ते में ख पर वाद चलाता है।

क ने उत्पीडन किया है, यद्यपि उसका कार्य इंग्लैण्ड की विधि द्वारा अपराध नहीं है, और यद्यपि भारतीय दण्ड संहिता (1980 का 45) की धारा 506 उस समय, जब और उस स्थान पर जहाँ वह कार्य किया गया था, प्रवृत्त नहीं थी।

**उत्पीडन के आवश्यक तत्व (Essential ingredients of coercion)** – (1) उत्पीडन दूसरे पक्षकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए इस उद्देश्य से कि वह पक्षकार करार में सम्मिलित होने के लिए अपनी स्वीकृति दे, काम में लाया जाता है, या

- (2) कोई भी ऐसा कार्य करना जो भारतीय दण्ड संहिता द्वारा निषिद्ध है, या
- (3) किसी भी ऐसे कार्य को रोकने की धमकी देना जो भारतीय दण्ड संहिता द्वारा निषिद्ध है, या
- (4) किसी सम्पत्ति को निरुद्ध करने की धमकी देना या उसकी विधि विरुद्ध रूप से निरुद्ध करना, या

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

(5) प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए इस आशय से कि किसी व्यक्ति को किसी करार में प्रवेश कराया जाय।

इस प्रकार भारतीय दण्ड संहिता की धारा 15 में वर्णित कोई निषिद्ध कृत्य का करना या उसको करने की धमकी देना, किसी सम्पत्ति को अवैध तरीके से रोकना या रोकने की धमकी देना, उत्पोड़न (Corection) कहलाता है। संविदा से असम्बद्धित व्यक्ति से उत्पीड़न किया जा सकता है। उत्पीड़न से प्राप्त की गयी संविदा उसे व्यक्ति के विकल्प पर जिसकी सहमति इस प्रकार प्राप्त हुई हो, शून्यकरणीय (Voidable) हो जायेगी।

**भारतीय दण्ड संहिता का निषिद्ध कार्य** – भारतीय दण्ड संहिता के अधीन निषिद्ध कार्य से हमारा अभिप्राय ऐसे कार्य से है जो कि संहिता द्वारा अपराध के रूप में दण्डनीय हो। कोई भी दण्ड संहिता केवल उसी कार्य को निषिद्ध घोषित करती है जो उसके द्वारा दण्डनीय घोषित किया गया है।

**आत्महत्या करने की धमकी देना** – यह प्रश्न कि क्या आत्महत्या करने की धमकी देना भारतीय दण्ड संहिता द्वारा निषिद्ध कार्य है अथवा नहीं, इस संबंध में भेद है। धारा 15 के अनुसार कोई कार्य तभी उत्पीड़न हो सकता है जबकि वह भारतीय दण्ड संहिता द्वारा निषिद्ध हो। भारतीय दण्ड संहिता में आत्महत्या करना दण्डनीय है न कि उसकी धमकी देना। इस संबंध में अगीराजू बनाम शेशम्गा (1917) 41 मद्रास 33 का वाद उल्लेखनीय है। इस मामले में एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी तथा लड़के को यह धमकी दी कि यदि वे उसके पक्ष में निर्मुक्तिपत्र (Release Deed) का निष्पादन नहीं करते हैं तो वह आत्महत्या कर लेगा। इसे पत्नी तथा लड़के के लिए उत्पीड़न माना गया।

**भारतीय तथा अंग्रेजी विधि में अन्तर** – उत्पीड़न के संबंध में भारतीय तथा अंग्रेजी विधि में निम्नलिखित अंतर है :–

1. भारतीय विधि में उत्पीड़न किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध भी हो सकता है जो संविदा का पक्षकार नहीं है, परन्तु अंग्रेजी विधि में ऐसा नहीं हो सकता है।
2. भारत में उत्पीड़न वस्तुओं या सम्पत्ति के विरुद्ध भी किया जा सकता है। इंग्लैण्ड में केवल व्यक्ति के विरुद्ध ही किया जा सकता है।
3. उत्पीड़न भारत में किसी भी व्यक्ति द्वारा हो सकता है। इंग्लैण्ड में केवल संविदा के पक्षकारों द्वारा ही हो सकता है।

**उत्पीड़न का प्रभाव** :— भारतीय संविदा अधिनियम के अंतर्गत किसी भी संविदा पर उत्पीड़न का प्रभाव यह होता है कि वह संविदा उस व्यक्ति के विकल्प पर शून्यकरणीय (voidable) हो जाती है जिसकी सहमति इस प्रकार उत्पीड़न द्वारा प्राप्त की गयी है। यह आवश्यक नहीं है कि संविदा करने वाला पक्षकार ही उत्पीड़न का विषय हो, वह किसी अन्य के खिलाफ भी हो सकता है।

**(II) अनुचित प्रभाव (Undue Influence)** – भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 16 में अनुचित प्रभाव की परिभाषा दी गयी है जो कि निम्नलिखित है :—

(1) “जहाँ की पक्षकारों के बीच विद्यमान सम्बंध ऐसे हैं कि पक्षकारों में से एक दूसरे की इच्छा की अधिशासित करने की स्थिति में है और इस स्थिति का उपयोग उस दूसरे से अपेक्षाकृत अनुचित प्रलाभ (unfair advantage) अभिप्राप्त करने के लिए करता है वहाँ संविदा के बारे में कहा जाता है कि वह अनुचित प्रभाव द्वारा उत्प्रेरित की गयी है।”

(2) विशेषतया तथा पूर्ववर्ती सिद्धांत की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना किसी व्यक्ति के बारे में समझा जाता है कि वह –

(क) जहाँ कि वह दूसरे पर वास्तविक या प्रतिभाषित प्राधिकार रखता है या जहाँ कि वह उस दूसरे के साथ न्यासवत् सम्बंध में है, या

(ख) जहाँ कि वह ऐसे व्यक्ति के साथ संविदा करता है, जिसकी मानसिक सामर्थ्य आयु, रूणता या मानसिक या शारीरिक पीड़ा के कारण अस्थायी रूप से प्रभावित है।

वहाँ वह दूसरे की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में है।

(3) जहाँ कोई व्यक्ति जो कि दूसरे की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में है, उसके साथ संविदा करता है, और वह संव्यवहार, प्रत्यक्ष या दिये गये साक्ष्य पर अन्तः कुटिल प्रतीत होता है, वहाँ यह सिद्ध करने का भार कि ऐसी संविदा असम्यक, असर से उत्प्रेरित नहीं की गयी थी उसे दूसरे की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति वाले व्यक्ति पर होगा।

इस उपधारा में की कोई बात भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 111 के उपलब्धों को प्रभावित नहीं करेगी।

कोई करार अनुचित प्रभाव द्वारा उत्प्रेरित किया गया वह कहा जाता है, जबकि संविदा के पक्षकारों के बीच सम्बंध ऐसे होते हैं कि, (1) एक पक्षकार दूसरे की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में होता है तथा (2) वह दूसरे पर अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए उस स्थिति का पयोग करता है। इनमें एक तत्व का भी अभाव होने पर अनुचित प्रभाव का गठन नहीं होता।

**अनुचित प्रभाव के आवश्यक तत्त्व (Essential elements of undue influence)** – किसी भी संविदा में असम्यक असर के लिए निम्नलिखित तत्त्वों का होना आवश्यक है –

(1) पक्षकारों के बीच ऐसा सम्बंध होना चाहिए कि एक व्यक्ति दूसरे को प्रभावित करने की स्थिति में हो।

(2) प्रभाव डालने की स्थिति में होने वाले व्यक्ति ने वस्तुतः ऐसी प्रभाव डालने वाली स्थिति का उपयोग अनुचित लाभ उठाने के लिए किया हो।

यह सिद्ध करने के लिए किसी संविदा में असम्यक असर का प्रयोग किया गया है उपरोक्त दोनों बातों का सिद्ध किया जाना जरूरी है।

अब प्रश्न उठता है कि प्रभाव डालने वाली स्थिति कब उत्पन्न होती है। धारा 16 (1) में एक उपधारणा उत्पन्न होती है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में है, यदि –

वह उस दूसरे पर वास्तविक या प्रतिभाषित (Apparent) प्राधिकार रखता है, या जहाँ कि वह दूसरे के साथ न्यासवत् सम्बंध में है, या सामर्थ्य, आयु, रूणता या मानसिक या शारीरिक पीड़ा के कारण अस्थायी या स्थायी रूप से प्रभावित है।

**पर्दानशीन स्त्री की स्थिति** – पर्दानशीन स्त्री वह होती है जो देश की प्रथा या किसी सम्प्रदाय विशेष के जिसकी वह सदस्य है, प्रचलन के अनुसार पूर्ण एकान्त पालन करने पर मजबूर होती है। भारत के न्यायालय यह मानते हैं कि ऐसी स्त्रियों विशेष रूप से अनुचित प्रभाव की शिकार होती हैं। चैकि पर्दानशीन ओरत पर्दे में रहकर समाज से कुछ अर्थों में पृथक जीवन बिताती है तथा संसार की बातों से अनभिज्ञ रहती है, अतः विधि द्वारा उन्हें विशेष संरक्षण प्रदान किया जाता है जो कोई व्यक्ति उनसे संविदा करता है, उस पर यह भार होता है कि वह सिद्ध करे कि पर्दानशीन स्त्री से संव्यवहार की प्रकृति तथा परिणाम को भली-भौंति समझ लिया था।

**अनुचित प्रभाव सिद्ध करने का भार (Burden of proving undue influence)**— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 16 (3) अनुचित प्रभाव सिद्ध करने के भार के बारे में विवेचना करती है। इसके अनुसार जहाँ कोई व्यक्ति जो कि दूसरे की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में है, उसके साथ संविदा करता है और वह संव्यवहार प्रत्यक्षतः या दिये गये साक्ष्य पर अन्तःकरण विरुद्ध प्रतीत होता है, वहाँ यह सिद्ध करने का भार कि ऐसी संविदा अनुचित प्रभाव से उत्प्रेरित नहीं की गयी थी, उस दूसरे की इच्छा को अधिशासित करने वाले व्यक्ति पर होगा।

**ब्याज की ऊँची दर तथा असम्यक् असर (High rate of interest and undue influence)** – केवल यह तथ्य कि संव्यवहार या सौदा अनवधानता के कारण हुआ है अथवा संविदा में ब्याज की दर बहुत ऊँची है, ये सब बातें स्वमेव असम्यक् असर के लिये पर्याप्त नहीं होगी।

**अनुचित प्रभाव का परिणाम** – यदि कोई संविदा अनुचित प्रभाव व्वारा की जाती है तो, वह शून्यकरणीय होगी जैसा कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 19 (क) में कहा गया है कि जब किसी करार के लिए सम्मति असम्यक् असर व्वारा करायी गयी है, तब यह करार उस पक्ष के, जिसकी सम्मति इस प्रकार करायी गयी है, विकल्प पर शून्यकरणीय संविदा है।

ऐसी कोई संविदा या तो सम्पूर्ण रूप से या, यदि उस पक्ष ने जो उसके शून्यकरण का हकदार है, तद्धीन कोई लाभ प्राप्त किया हो तो ऐसे निर्दन्धों या शर्तों पर जैसी कि न्यायालय को न्यायानुगत मालूम पढ़े, अपास्त की जा सकेगी।

**उत्पीड़न तथा अनुचित प्रभाव में अन्तर (Difference between coercion and undue influence)** –

(1) अनुचित प्रभाव में प्रभाव नैतिक होता है, किन्तु उत्पीड़न में प्रभाव भौतिक होता है।

(2) अनुचित प्रभाव में यह आवश्यक है कि संविदा करने वाले दोनों पक्षकारों के बीच पहले से ही कोई ऐसा सम्बंध नहीं होना चाहिए जिससे कि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार के विचारों पर प्रभाव डाल सके। जबकि उत्पीड़न में यह आवश्यक नहीं है कि दोनों पक्षकारों में पहले से कोई सम्बंध हो।

(3) अनुचित प्रभाव में प्रतिग्रहण करने वाला पक्षकार यह समझता है कि प्रतिग्रहण स्वतंत्र रूप से दे रहा है जबकि उत्पीड़न में प्रतिग्रहण करने वाला पक्षकार यह समझता है कि उसके प्रतिग्रहण मजबूरन करना पड़ रहा है।

(4) जहाँ प्रतिज्ञाकर्ता व्वारा किया गया प्रतिग्रहण उत्पीड़न के अधीन किया गया है, वहाँ संविदा प्रतिज्ञाकर्ता के विकल्प पर शून्यकरणीय होगी। किन्तु जहाँ ऐसे प्रतिज्ञाकर्ता व्वारा प्रतिग्रहण की स्वीकृति अनुचित प्रभाव में अधीन की गयी है, वहाँ वह या तो शून्यकरणीय होगी, या न्यायालय उसे परिवर्तित रूप से प्रवर्तनीय कर सकती है।

**(III) कपट की परिभाषा (Definition of fraud)** – भारतीय संविदा अधिनियम में कपट की निम्नलिखित परिभाषा धारा 17 के अन्तर्गत दी गयी है

**व्याख्या** – "कपट से अभिप्रेत और उसके अंतर्गत निम्न कार्यों में से कोई ऐसा कार्य है, जो संविदा के एक पक्षकार व्वारा, या उसकी मौनानुकूलता से या उसके अभिकर्ता व्वारा, उसमें के दूसरे पक्षकार को या उसके अभिकर्ता को धोखा देने के लिए या उसे संविदा करने के लिए उत्प्रेरित करने के आशय से किया गया है –

(1) उस बात का जो सत्य नहीं है, ऐसे व्यक्ति व्वारा जो कि उसके सत्य होने का विश्वास नहीं करता है तथ्य के रूप में सुझाव,

(2) किसी तथ्य की, उस तथ्य का विश्वास या ज्ञान रखने वाले किसी व्यक्ति के व्वारा सकिय छिपावट

(3) पालन करने के किसी आशय के बिना की गयी प्रतिज्ञा,

(4) धोखा देने के लिए उपकल्पित (fitted) अन्य कोई कार्य,

(5) कोई ऐसा कार्य या कार्य लोप जिसका कि कपटपूर्ण होना विधि विशेष रूप से घोषित करती है।

**व्याख्या** – उन तथ्यों कि बारे में कोरी मौनता (mere silence) जिनसे यह संभव है कि कोई संविदा करने के लिए किसी व्यक्ति की रजामन्दी प्रभावित हो सकती है जब तक कि मामले की परिस्थितियाँ ऐसी न हों कि उसको ध्यान में रखते हुए बोलना मौन रखने वाले व्यक्ति का कर्तव्य है या जब तब कि उसकी मौनता स्वतः बोलने के समतुल्य न हो, कपट नहीं है।

कपट की व्याख्या व्यापक शब्दों में की जा सकती है। जब कभी कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति से भौतिक लाभ (Material advantage) अनुचित एवं दोषपूर्ण साधनों से प्राप्त करता है तो यह कहा जाता है कि उसने कपट किया। 'कपट' शब्दा सामान्य रूप से उन अवश्याओं में लागू किया जाता है जहाँ कि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को किसी मिथ्या व्यपदेशन (False representation) के आधार पर संविदा करने के लिए उत्प्रेरित करता है। कपट तब सिद्ध हो जाता है जबकि (1) किसी तथ्य का, (2) मिथ्याव्यपदेशन (3) जानबूझकर या उसकी सत्यता में विश्वास न रखते हुए या उपेक्षापूर्ण रूप से बिना यह निश्चय किये कि क्या तथ्य सत्य है या मिथ्या, ऐसे किया गया है कि (4) कोई व्यक्ति उस मिथ्या व्यपदेशन पर कार्य करने के लिए उत्प्रेरित हो, और (5) ऐसा उत्प्रेरित किया गया व्यक्ति उसके अनुसार कार्य करे और उसके कारण हानि उठाये। कपट धूर्ता या अनुचित साधनों से की गयी कटता व्वारा भी किया जाता है।

अंग्रेजी विधि में कपट की परिभाषा डेरी बनाम पीक (1889) के मुकदमें में स्पष्ट रूप से की गयी है। कपट उस समय प्रमाणित समझा जायगा जब यह दिखाया जाय कि मिथ्या व्यपदेशन –

(1) जानबूझकर, या

(2) इसकी सत्यता में विश्वास किये बिना, या

(3) इस बात पर बिना विचार किये हुए कि वह सत्य है या मिथ्या, किया गया हो।

**कीर महोदय ने कहा है** – सभी अवश्याओं में कपट से किसी व्यक्ति की ओर से कोई ऐसा साशय (willful act) कार्य अभिप्रेत है जिसके व्वारा किसी अन्य व्यक्ति को अवैध या असाम्यपूर्ण साधनों से वह कार्य के करने से वंचित रखने की वांछा की जाती है जिसे वह करने के लिए हकदार है।

अतः कपट ऐसे मिथ्या कथन को कहते हैं जिसे कि उसकी सत्यता में बिना विश्वास के किया जाता है।

यह भली-भॱ्ठि स्थापित नियम है कि जिस व्यक्ति के साथ कपट किया गया है, यदि वह ऐसी स्थिति में है कि थोड़े से परिश्रम व्वारा वह सत्य की खोज कर सकता है, तो यह कपट नहीं माना जायगा।

**कपट के आवश्यक तत्व-**

(1) कपट के कार्य का –

(क) संविदा के किसी पक्षकार व्वारा, या

(ख) उसकी मौनानुकूलता (Connivance) से, या

(ग) उसके अभिकर्ता व्वारा, किया जाना जरूरी है।

जो व्यक्ति संविदा का पक्षकार न हो, उसके व्वारा किया गया कपट संविदा को प्रभावित नहीं करता।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

### (2) कपट के कार्य का –

(क) किसी ऐसे तथ्य के विषय में जो कि सत्य नहीं है, किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया गया सुझाव होना जरूरी है जो कि उसके सत्य होने का विश्वास नहीं करता।

अतः कपटपूर्ण होने के लिए तथ्य में असत्य कथन का उस व्यक्ति के विश्वास में भी असत्य होना जरूरी है जो कि उसे करता है।

मिथ्या कथन जो कि सच्चा विश्वास करते हुए किया जाय कि वह सत्य है – डेरी बनाम पीक के मामले में फैसले से अब यह सुनिश्चित है, अर्थात् यदि कोई कथन इस सच्चे विश्वास के साथ किया जाय कि वह सत्य है और बाद में यह मिथ्या निकले, तो कोई कपट नहीं होता।

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किसी तथ्य का सक्रिय रूप से छिपाया जाना जिसको उस तथ्य का ज्ञान तथा विश्वास हो— किसी तथ्य को जानबूझकर छिपाया जाना भी कपट का एक तत्व है।

(ग) पालन न करने के किसी आशय के बिना की गई प्रतिज्ञा – ऐसी कोई प्रतिज्ञा, जिसका पालन करने का प्रतिज्ञाकर्ता का आशय नहीं रहा है, कपट होता है। ऐसी खरीददारी जो वस्तु—भुगतान का कोई आशय रखे बिना की गयी, यह कपटपूर्ण प्रतिज्ञा है (fraudulent promise)

(घ) धोखा देने के लिए उपकरणित अन्य कोई कार्य – मनुष्य नये प्रकार के कपट का अविष्कार करने में बहुत चतुर होता है। सभी प्रकार का आश्चर्यजनक कार्य, कपटपूर्ण उपाय (trick), चतुरतापूर्ण वश बदलना या छिपाव तथा दूसरे अनुचित ढंग से, जो दूसरे को ठगने के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं, वे कपट होते हैं और यह उपधारा कपट के ऐसे सभी मामलों को आवत करती है।

(ङ) कोई ऐसा कार्य या कार्यलौप जिसको कि कपटपूर्ण होना विधि विशेष रूप से धोषित करती है – उदाहरणस्वरूप सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम की धारा 55 वर्णन करती है कि अचल सम्पत्ति के विकेता के लिए यह आवश्यक है कि सम्पत्ति के वास्तविक दोष को केता को बता दें, जिस विकेता जानता है और केता नहीं जानता और जिसे केता अपनी सामान्य सावधानी से पहचान नहीं सकता था। ऐसा प्रकट न करने में यदि कोई कार्यलौप हो तो वह कपट समझा जाता है।

(३) कपटपूर्ण कथन धोखा देने के उद्देश्य से किया गया हो और वास्तव में धोखा दिया गया हो। ऐसा छल जिनके द्वारा धोखा जिनके द्वारा धोखा नहीं दिया गया, कपट का रूप धारण नहीं कर सकता।

(४) कपट का व्यवहार संविदा के पक्षकार अथवा उसके एजेन्ट के विरुद्ध किया गया है अथवा किसी अन्य व्यक्ति को संविदा निर्माण में लाने के उद्देश्य से किया गया हो।

केवल चुप्पी कपट नहीं है – यदि एक पक्षकार अपने माल के दोष के विषय में अथवा अन्य तथ्य के विषय में, जो अन्य पक्ष के संविदा करने की उत्सुकता को प्रभावित कर सकती है, चुप रहता है तो यह कपट नहीं होता है। क्योंकि सिद्धांत यह है कि "Mere silence does not amount to fraud" अर्थात् केवल चुप्पी कपट नहीं है।

धारा 17 की व्याख्या, जो यह सामान्य नियम प्रदान करती है, दो अपवाद प्रस्तुत करती है –

- जब कि मामले कि परिस्थितियाँ ऐसी हो कि उनको ध्यान में रखते हुए बोलना चुप्पी रखने वाले व्यक्ति का कर्तव्य है – चरम विश्वास की संविदाओं में एक पक्ष का यह कर्तव्य है कि वह अपनी जानकारी के सभी सारावान तथ्यों को दूसरे पक्षकार को बता दे और ऐसी संविदाएँ सारावान तथ्यों के अप्रकटन से अवैध की जा सकती हैं। दूसरे शब्दों में ऐसी संविदा में चुप्पी रखना कपट होगा।

- खामोशी (चुप्पी) खत: ही बोलने के समतुल्य हो— ऐसे मामले जहाँ पक्षकार की ओर से चुप्पी (खामोशी) खत: ही बोलने के समतुल्य हो तो चुप्पी कपट का रूप धारण कर लेगी।

संविदा पर कपट का प्रभाव – धारा 19 वर्णन करती है कि संविदाओं पर उत्पीड़न, कपट या मिथ्या व्यपदेशन का पभाव शून्यकरणीय है।

संविदा में वह पक्षकार, जिसकी सम्मति कपट से कराई गई थी यदि वह ठीक समझता है, आग्रह कर सकता है कि संविदा का पालन किया जाये, और वह उस स्थिति में रखा जाय जिनमें कि यदि किया गया व्यपदेश सत्य होता, तो वह होता।

यदि ऐसी सम्मति मिथ्या व्यपदेशन या चुप्पी द्वारा, जो कि धारा 17 के अर्थ के अंतर्गत कपटपूर्ण है, कर दी गयी थी तो ऐसा होने पर भी संविदा, यदि पक्षकार के पास, जिसकी सम्मति इस प्रकार करायी गयी थी, सत्य को मामूली उद्यम (ordinary diligence) से पता चला लेने के साधन थे, शून्यकरणीय नहीं है।

वह कपट या मिथ्याव्यपदेशन, जिससे कि संविदा में कि किसी पक्षकार की, जिससे कि ऐसा कपट किया गया था या जिससे ऐसा मिथ्या व्यपदेशन किया गया था सम्मति उद्भूत नहीं हुई है संविदा को शून्यकरणीय नहीं कर देता।

उस अवस्था में उपचार जब संविदा कपट द्वारा उत्प्रेरित की जाती है –

- असंतुष्ट पक्षकार अपने विकल्प पर संविदा खारिज करा सकता है अथवा
- वह आग्रह कर सकता है कि संविदा का पालन किया जायगा और वह ऐसी स्थिति में रखा जायगा जिसमें यदि वर्णन सत्य होता तो वह रहता।
- वह व्यक्ति, जिसकी सम्मति कपट द्वारा प्राप्त की गई है, वह संविदा को शून्य करने के लिए अधिकार रखता है और उस कपट से उसे जो हानि हुई है, उसके लिए वह कपट करने वाले पक्षकार के विरुद्ध हर्जने का दावा कर सकता है।

महत्वपूर्ण मामला – डेरी बनाम पीक

(iv) मिथ्या व्यपदेशन (Misrepresentation) – भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 18 में मिथ्या व्यपदेशन की परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार मिथ्या व्यपदेशन से अभिप्रेत और उसके अंतर्गत—

- जो बात सत्य नहीं है उसका ऐसी रूपता में किया गया परिस्फूट प्रतिपादन है जैसे कि उस व्यक्ति की, जो कि उसे करता है जानकारी से यद्यपि वह उस बात के सत्य होने का विश्वास करता है, अधिदिष्ट नहीं है।
  - कोई ऐसी कर्तव्य भग्नता की है, जिससे की धोखा देने के आशय के बिना यह भग्नता व्यक्ति, जो उसे करता है या उसके अधिकारी से दावा करने वाले किसी व्यक्ति को कोई प्रलाभ किसी दूसरे को ऐसे विमुख करके, जैसे कि उससे दूसरे पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, उठा लेता है।
  - करार के किसी पक्षकार से उस बात के बारे में चाहे किसी ही निर्दोषता से क्यों न हो, कोई भूल करना है, जो कि उस करार का विषय है।
- उपरोक्त परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि मिथ्या व्यपदेशन एक झूठा वक्तव्य होता है जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया जा सकता है जो या तो यह जानता कि वह झूठ है या ईमानदारी से यह विश्वास करता है जो कि सत्य है कि यदि उस व्यक्ति को यह मालूम है कि वक्तव्य झूठा है तो इस

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

कपटपूर्ण मिथ्या व्यपदेशन कहा जावेगा और यदि वह ईमानदारी से यह विश्वास करता है कि वह कथन सत्य है तो इस निर्दोष मिथ्या व्यपदेशन कहा जावेगा।

इस प्रकार मिथ्या व्यपदेशन का अर्थ है किसी वस्तु के विषय में असत्य वर्णन देना।

**मिथ्या व्यपदेशन के आवश्यक तत्व (Essential elements of misrepresentation)** – धारा 18 के अनुसार मिथ्या व्यपदेशन के निम्नलिखित आवश्यक तत्व हैं :

1. ऐसी बाते कहना जो कि सत्य नहीं है परन्तु जिनको कहने वाला सत्य समझता है।
2. कोई ऐसी कर्तव्य भग्नता जो एक को तो प्रताभ पहुचाएँ तथा दूसरे पर प्रतिकूल प्रभाव डाले।
3. करार के किसी पक्षकार से करार के विषय में भूल कराना।

**मिथ्या व्यपदेशन का संविदा पर प्रभाव – शून्यकरणीय है।**

वह पक्षकार जिसकी सम्मति मिथ्या व्यपदेशन द्वारा प्राप्त की गयी है यदि वह ठीक समझता है, आग्रह कर सकता है कि संविदा का पालन किया जाये और वह उस स्थिति में रखा जाये जिसमें कि यदि किया गया व्यपदेशन सत्य होता तो वह होता।

**कपट तथा मिथ्या व्यपदेशन में अंतर (Differences between fraud and misrepresentation) –**

1. कपट में प्रवचना (धोखा) करने का आशय मौजूद रहता है जबकि मिथ्या व्यपदेशन में प्रवचना का आशय नहीं रहता।
2. कपट में संविदा भंग की जा सकती है और प्रवचना के कारण जो हानि हुई है, उसकी नुकसानी भी प्राप्त की जा सकती है, जबकि मिथ्या व्यपदेशन में केवल संविदा भंग की जा सकती है नुकसानी नहीं प्राप्त की जा सकती।
3. कपट में प्रतिवादी की ओर से यह प्रतिवाद नहीं किया जा सकता है कि वादी के पास सत्यता जानने के साधन थे, जबकि मिथ्या व्यपदेशन में प्रतिवादी यह प्रतिवाद कर सकता है कि यदि वादी चाहता, तो सत्यता का पता लगा सकता था।
4. कपट के मामले में सुझाव देने वाला व्यक्ति सुझाव की सत्यता पर विश्वास नहीं करता, जबकि मिथ्या व्यपदेशन करने वाला व्यक्ति उसे सत्य समझ कर करता है।

(v) **भूल (Mistake)** - भूल दो प्रकार की होती है – 1. तथ्य की भूल और 2. विधि की भूल।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 20 तथ्य विषयक तथा धारा 21 विधि विषयक भूल के सबंध में विवेचना करती है।

धारा 20 के अनुसार, "जब किसी करार में के दोनों पक्षकार करार के लिए सारभूत किसी तथ्य की बात के बारे में भूल के अधीन है, वहाँ करार शून्य होता है।"

तथ्य की भूल (Mistake of fact) दो प्रकार की होती है –

1. द्विपक्षीय bilateral भूल या 2. एकपक्षीय unilateral भूल

**द्विपक्षीय भूल** – यदि दो पक्षकारों के बीच करार के लिए वर्तमान आवश्यक तथ्य के सबंध में भूल है तो ऐसा करार शून्य होगा।

**विषयवस्तु की पहचान सबंधी भूल** – यदि दो व्यक्ति किसी वस्तु के विकल्प की संविदा करते हैं और दोनों के मन में अलग वस्तु का ख्याल रहता है परन्तु वे दोनों विश्वास करते हैं कि वे सहमत हैं तो ऐसी हालत में संविदा नहीं होती है क्योंकि वह भूल संविदा को शून्य कर देता है।

**विधि विषयक भूल (Mistake of Law)** – यह तीन प्रकार की होती है –

1. देश की साधारण विधि के सबंध में भूल – इस सबंध में सूत्र है कि Ignorantia juris non excusat, (Ignorance of law is no excuse) विधि की अनभिज्ञता क्षम्य नहीं है। नियम यह है कि प्रत्येक व्यक्ति देश की विधि के बारे में जानकारी रखता है। अतः विधि की भूल के लिए कोई भी माफी नहीं दी जा सकती।
2. निजी अधिकार के सबंध में भूल – किसी भी व्यक्ति के निजी अधिकार का अस्तित्व तथ्य का विषय है यद्यपि यह विधि के नियम पर आधारित होता है और यदि पक्षकार अपने सापेक्ष तथा कमशः (relative or respective) अधिकारों की किसी पारस्परिक भूल या दुभ्रम (misapprehension) के अधीन संविदा करते हैं तो करार रद्द किये जाने योग्य होता है क्योंकि वह करार सामान्य भूल के परिणामस्वरूप किया जाता है।
3. विदेशी विधि के सबंध में भूल – विदेशी विधि की भूल तथ्य सबंधी भूल के स्तर पर आधारित है। **उदाहरण** – क तथा ख अमेरिका में की विनियम-पत्र सबंधी विधि के बारे में होने वाले गलत विश्वास के आधार पर एक संविदा करते हैं। संविदा शून्य है।

**विधि विषयक भूल का प्रभाव** – धारा 21 के अनुसार "कोई संविदा इस कारण से शून्यकरणीय नहीं है कि वह भारत में प्रवत्त किसी विधि के बारे में किसी भूल के कारण की गई थी, किन्तु भारत में अप्रवत्त किसी विधि के बारे में किसी भूल का वैसा प्रभाव है जैसा कि तथ्य की भूल का है।" उदाहरण अ और ब इस विश्वास के आधार पर संविदा करते हैं कि अमुक प्रकार का ऋण भारतीय मर्यादा विधि द्वारा वर्जित है। वह संविदा शून्यकरणीय नहीं है।

यदि पक्षकारों के बीच तथ्य की भूल है तो माफी मिल सकती है परन्तु यदि भूल विधि की अज्ञानता पर आधारित है तो उससे किसी को माफी नहीं मिल सकती क्योंकि यह बात सिद्धांत रूप से मान ली गई है कि प्रत्येक व्यक्ति विधि की जानकारी रखता है। विधि की अज्ञानता का बहाना नहीं किया जा सकता।

**विधिपूर्ण प्रतिफल (Lawful consideration)** – भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 23 में यह बताया गया है कि कौन-कौन से प्रतिफल विधिपूर्ण है। धारा 23 के अनुसार करार का प्रतिफल और उददेश्य जब तक कि –

1. वह विधि द्वारा निषिद्ध नहीं है, या
2. वह ऐसे रूप का नहीं है कि यदि वह अनुज्ञात किया गया तो वह किसी विधि के उपबन्धों को निष्फल कर देगा, या
3. वह कपटपूर्ण नहीं है, या
4. उसमें दूसरे के शरीर या सम्पत्ति की क्षति के अंतर्गत या विवक्षित नहीं है, या
5. उसे न्यायालय अनैतिक या लोक नीति के विरुद्ध नहीं समझता है, विधि पूर्ण होता है।

इन अवस्थाओं में से प्रत्येक में, करार का प्रतिफल या उददेश्य विधि विरुद्ध कहलाता है। प्रत्येक करार जिसका उददेश्य या प्रतिफल विधि विरुद्ध है, शून्य है।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

**विधि विरुद्ध प्रतिफल या उद्देश्य** – यह विधि का आधारभूत सिद्धांत है कि अधम कार्य से दूषित कार्य वैधतः प्रभाव शून्य होता है। धारा 23 के अनुसार – यदि किसी करार के उद्देश्य या प्रतिफल में से एक या दोनों अवैध हों तो करार शून्य होगा।

**धारा 10 के अनुसार** – कोई भी करार तब संविदा अर्थात् प्रवर्तनीय होता है जबकि वह विधिपूर्ण प्रतिफल के लिए तथा विधिपूर्ण उद्देश्य से किया जाय।

**निम्नलिखित** कुछ इस प्रकार के प्रतिफल तथा उद्देश्य हैं जो धारा 23 के अधीन विधि-विरुद्ध होते हैं –

1. **विधि द्वारा निषिद्ध** – ऐसी संविदा जो विधि के विपरीत हो या उसकी नीति के विरुद्ध अवैध मानी जायेगी। यह आवश्यक नहीं है कि संविदा का उद्देश्य स्पष्ट रूप से विधि के विरुद्ध घोषित किया गया है। यदि वह प्रतिफल इस प्रकार का है कि विधि के परिलक्षित उद्देश्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है तो भी वह विधि द्वारा वर्जित माना जायेगी।

2. **करार इस रूप का हो कि उसके अनुज्ञात किये जाने पर वह किसी विधि के उपलब्धों को निष्कल कर देगा** – इस खण्ड में प्रयुक्त 'विधि' शब्द के अंतर्गत कोई भी अधिनियमित विधि का नियम है, जो तत्समय प्रवृत्त हो। इस विषय पर निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन विचार किया जा सकता है –

**करार ऐसा हो जो विधि के उपबन्धों को निष्कल करेगा** – इस खण्ड में प्रयुक्त किये गये विधि शब्द के अंतर्गत निम्नलिखित अधिनियम आ जाते हैं –

1. विधायी अधिनियम 2. हिंदू तथा मुस्लिम विधि के नियम 3. ऐसे नियम जिन्हें विधि की शक्ति प्राप्त है।

1. **विधायी अधिनियम के उपबन्धों को निष्कल करना** – विधायी अधिनियम से तात्पर्य ऐसे अधिनियमों से है जो या तो केन्द्रीय विधानमण्डल या राज्य विधानमण्डल द्वारा अधिनियमित हो।

2. **हिन्दू विधि के उपबन्धों को निष्कल करना** – यदि एक प्राकृतिक पिता अपना पुत्र इस प्रतिफल में दत्तक में देने का करार करता है कि दत्तकग्राही पिता उसे वार्षिक भत्ते का कुछ भुगतान किया करे। यह करार शून्य है। क्योंकि यह हिन्दू विधि के सिद्धांतों के विपरीत है। क्योंकि एक पिता अपने पुत्र को दत्तक में केवल प्रेम के कारण ही दे सकता है और धन के प्रतिफल से नहीं दे सकता।

3. **ऐसे करार जो भारत में तत्समय प्रवृत्त होने वाले नियमों को निष्कल करते हों** – रिसीवर न्यायालय का पदाधिकारी होता है और केवल न्यायालय को उसका परिश्रमिक नियम करने की शक्ति होती है। पक्षकार बिना न्यायालय की अनुज्ञा के उसमें कोई कमीवैशी नहीं कर सकते। न्यायालय की स्वीकृति के बिना रिसीवर का वेतन देने की प्रतिज्ञा, भले ही वह बिना शर्त की हो, प्रतिज्ञाकर्ता को बाध्य नहीं करती क्योंकि वह कानून का उल्लंघन करती है।

3. **कपटपूर्ण (Fraudulent)** – एक करार का उद्देश्य या प्रतिफल कपट द्वारा दूषित हो जाता है।

4. **दूसरे के शरीर या सम्पत्ति की क्षति का अन्तर्गत होना** – किसी व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को क्षति कारित करने के उद्देश्य अथवा प्रतिफल के लिए की गई संविदा प्रवर्तनीय नहीं होती। क्योंकि ऐसा उद्देश्य अथवा प्रतिफल अविधिपूर्ण होता है। एक व्यापारी अपलेखात्मक प्रकाशनों के मूल्य की वसूली नहीं पा सकता और न उसका मुद्रक ही अपलेखात्मक साहित्य को छापने का मूल्य वसूल कर सकता है और अपलेखात्मक साहित्य के प्रकाशन के संबंध में प्रकाशक द्वारा किये गये करार का पालन हर्जाने की पूर्ति के लिए नहीं किया जा सकता है।

5. **अनैतिक** – ऐसा करार जिसका उद्देश्य या प्रतिफल अनैतिक हो, शून्य होता है और उसे प्रवर्तित नहीं किया जा सकता (Ex dolo malo non oritur action)। इस सिद्धांत का आधार–सूत्र नीति के उन सामान्य सिद्धांतों पर आश्रित है जिसका अर्थ यह है कि न्यायालय ऐसे व्यक्ति की सहायता नहीं कर सकता जिसके बाद का हेतु किसी अनैतिक कार्य पर आधारित है।

6. **लोक-नीति के विरुद्ध प्रतिफल या उद्देश्य रखने वाले करार** – ऐसे करार जिनका प्रतिफल या उद्देश्य लोकनीति के विरुद्ध होता है, अवैध है। यद्यपि लोकनीति की परिभाषा इस अधिनियम में नहीं दी गयी है, किंतु भी निम्नलिखित करार ऐसे हैं जो लोकनीति के विरुद्ध मानते जा सकते हैं।

1. ऐसे करार जिनसे अन्य राज्यों के संबंध में राज्य को क्षति पहुँचती है।

2. लोक सेवा को क्षति पहुँचाने वाले करार।

3. न्याय के मार्ग में रुकावट डालने वाले करार।

4. कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग करने वाले करार।

5. सदाचारण के प्रतिकूल करार।

6. व्यापार की स्वतंत्रता को प्रभावित करने वाले करार।

ऐसे करार जो लोकनीति (public policy) के विरुद्ध होते हैं, धारा 23 के अंतर्गत प्रवर्तनीय नहीं होते। यह करार कि कर्मचारी यदि उच्चतर वेतन का दावा नहीं करेगा तो उसे बिना बारी के पदोन्नति दी जाएगी, इस धारा के अधीन अवैध होगा।

**घेरूलाल बनाम महादेव** के बाद में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश सुन्नाराव ने कहा कि 'लोकनीति' शब्दा की धारणा बड़ी ही भ्रमात्मक है। यह अविश्वसनीय मार्गदर्शक है। विधि का प्राथमिक सिद्धांत यह है कि पक्षकारों ने जो प्रतिज्ञा की है, उसको लागू किया जाय। परन्तु कुछ मामला में न्यायालय पक्षकारों को उनके दायित्वों से उन्मुक्त कर सकता है। यदि उनका दायित्व सार्वजनिक नीति के विरुद्ध है।

यह स्वीकार किया गया कि इस बात का निर्धारण कि लोकनीति के विरुद्ध क्या है, समय-समय पर बदलता है।

**"प्रतिफल के बिना किया गया करार शून्य है"** इस नियम के अपवाद (**Agreement without consideration is void**) – चूंकि प्रतिफल संविदा का एक आवश्यक तत्व है। इसलिए संविदा अधिनियम की धारा 25 में यह नियम प्रतिपादित किया गया है कि प्रतिफल के बिना करार शून्य है। धारा 25 कहती है कि "प्रतिफल के बिना करार, जब तक कि वह लेखनबद्ध तथा रजिस्ट्रीकृत न हो, या की गई, किसी बात के लिए प्रतिकर देने की प्रतिज्ञा न हो, या मर्यादा विधि द्वारा वर्जित किसी ऋण को चुकाने की प्रतिज्ञा न हो शून्य होता है।"

**उदाहरण क, ख** को किसी प्रतिफल के बिना 1000 रुपये देने की प्रतिज्ञा करता है। यह करार शून्य है।

संविदा अधिनियम की धारा 25 में जहाँ यह नियम प्रतिपादित किया गया है कि प्रतिफल के बिना करार शून्य है वहाँ दूसरी ओर इस नियम के तीन अपवाद भी दिये गये हैं जो कि निम्नलिखित हैं:-

1. **प्राकृतिक प्रेम तथा स्नेह (Natural Love and Affection)** – धारा 25 के अनुसार यदि कोई करार अभिव्यक्त लिखित रूप में, पंजीकृत तथा पक्षकारों के मध्य प्रेम तथा स्नेह के कारण हो तथा पक्षकार एक-दूसरे के निकट सम्बंधी हो तो ऐसा करार इस कारण शून्य नहीं होगा कि उसमें प्रतिफल की कमी है।

उदाहरण क, प्राकृतिक प्रेम और स्नेह से अपने पुत्र क, को 1000 रुपये देने की प्रतिज्ञा करता है। क, ख के प्रति अपनी प्रतिज्ञा को लेखनबद्ध करता है और उसे रजिस्ट्रीकृत करता है। यह वैध संविदा है।

इस अपवाद को लागू करने के लिए निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है –

क. करार लेखनबद्ध होना चाहिए,

ग. करार प्राकृतिक प्रेम तथा स्नेहवश होना चाहिए तथा

घ. पक्षकारों का एक दूसरे से निकट सम्बन्ध होना चाहिए।

जहाँ करार के पक्षकार एक-दूसरे के निकट सम्बंधी हैं परन्तु उनमें प्राकृतिक प्रेम तथा स्नेह का अभाव हो तो ऐसा करार शून्य होगा तथा यह अपवाद लागू नहीं होगा।

2. **स्वेच्छा से किये गये कार्य की क्षतिपूर्ति करने की प्रतिज्ञा (Promise to compensate for something done voluntarily)** – धारा 25 (2) के अनुसार – यह किसी ऐसे व्यक्ति को पूर्णतया अर्थात् प्रतिफल देने की प्रतिज्ञा है, जिसने स्वेच्छा से –

1. वचनकर्ता के लिए कुछ किया है, या

2. कोई ऐसा कार्य किया है जिसे करने के लिए वह वचनकर्ता के प्रति वैध रूप से बाध्य था, और बाद में वचनकर्ता ने उसके प्रतिफलस्वरूप प्रत्यक्ष रूप से यह वचन किया है।

इस प्रकार यदि किसी व्यक्ति ने कोई कार्य स्वेच्छा से कर दिया है तथा उसके लिए दूसरा व्यक्ति उसकी पूर्णरूपेण या आंशिक रूप से क्षतिपूर्ति करने की प्रतिज्ञा करता है तो ऐसी प्रतिज्ञा इस आधार पर शून्य नहीं होगी कि उसमें प्रतिफल नहीं है।

उदाहरण 1. क, ख की थेली पाता है और उसे ख को दे देता है। क, ख को 50 रुपये देने की प्रतिज्ञा करता है। यह वैध संविदा है।

इस अपवाद को लागू करने के लिए निम्नलिखित तत्वों का होना जरूरी है –

1. इसमें कार्य पहले ही हो चुका होना चाहिए।

2. वह कार्य स्वेच्छा से किया जाना चाहिए।

3. वह कार्य प्रतिज्ञाकर्ता के लिए किया जाना चाहिए।

4. जिस समय यह कार्य किया गया हो उस समय प्रतिज्ञाकर्ता जीवित होना चाहिए।

5. इस कार्य के बदले में प्रतिज्ञाकर्ता व्यापार क्षतिपूर्ति के लिए प्रतिज्ञा की जानी चाहिए।

3. **समय व्यापार वर्जित ऋण की देनगी या भुगतान के लिए प्रतिज्ञा (Promise to pay a time barred debt)** – भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 25 (3) में तीसरा अपवाद दिया गया है जो परिसीमा या मर्यादा विधि के अंतर्गत समय व्यापार वर्जित ऋण के संबंध में है।

इसके अनुसार यदि मर्यादा विधि के अंतर्गत कोई कर्ज समय या अवधि बीत जाने से बाधित हो गया है तो उस कर्ज को आंशिक रूप से चुकाने के लिए प्रतिज्ञा इस अपवाद के अंतर्गत आती है।

उदाहरण – क को ख के 1000 रुपये देने हैं, किन्तु यह ऋण मर्यादा अधिनियम व्यापार वर्जित है। क उस ऋण के मद्दे ख को 500 रुपये देने की प्रतिज्ञा करता है। यह संविदा है। यह संविदा एक वैध संविदा है तथा इस आधार पर शून्य नहीं होगी कि इसमें प्रतिफल का अभाव है।

इस अपवाद के निम्नलिखित आवश्यक तत्व है –

1. भुगतान करने की प्रतिज्ञा लिखित होनी चाहिए तथा उस पर प्रतिज्ञाकर्ता या उसके एजेंट के हस्ताक्षर होने चाहिए।

2. यह प्रतिज्ञा या तो पूर्ण ऋण की अदायगी के लिए होनी चाहिए या उसके किसी अंश के लिए होनी चाहिए।

3. यह प्रतिज्ञा उस ऋण की अदायगी के लिए होनी चाहिए जो मर्यादा विधि व्यापार बाधित हो गया है।

स्पष्टीकरण – 1 पूर्णदान – इस धारा की कोई बात दाता तथा अदाता के बीच वस्तुतः हुए किसी दान की विधिमान्यता को प्रभावित न करेगी।

स्पष्टीकरण – 2 प्रतिफल की अपर्याप्तता – प्रतिफल की अपर्याप्तता मात्र से कोई करार शून्य नहीं हो जाता, बरते कि वचनदाता की सम्मति स्वतंत्रता से दी गयी हो।

**प्रतिफल की अपर्याप्तता (Inadequacy of consideration)** – धारा 25 की व्याख्या 2 वर्णन करती है कि – “कोई करार, जिसके लिए प्रतिज्ञाकर्ता की सम्मति स्वतंत्ररूपेण दी गई है, केवल इस कारण शून्य नहीं है कि प्रतिफल अपर्याप्त है। किन्तु प्रतिफल की अपर्याप्तता न्यायालय व्यापार इस प्रश्न को अवधारित करने में ध्यान में देखी जा सकती है कि प्रतिज्ञाकर्ता की सम्मति स्वतंत्ररूपेण की गई थी या नहीं।”

उदाहरण 1. अ 1000 रुपये के मूल्य के घोड़े को 10 रुपये में बेचने के लिए करार है। करार के लिए अ की सम्मति स्वतंत्र रूप से दी गयी थी। प्रतिफल की अपर्याप्तता होते हुए भी करार एक संविदा है।

2. प्रतिफल की अपर्याप्तता के कारण कोई करार शून्य नहीं हो जाता। यह विषय पक्षकारों का है। अंग्रेजी विधि का यह सिद्धांत है कि प्रतिफल पर्याप्त भले ही न हो परन्तु उसका कुछ मूल्य अवश्य होना चाहिए अर्थात् उसे वास्तविक होना चाहिए।

### विवाह के अवरोधार्थ करार (Agreement in restraint of marriage)

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 26 के अनुसार, “अवयस्क से भिन्न किसी व्यक्ति के विवाह के अवरोधार्थ करार शून्य होगा।”

चेशाय तथ फीफुट के अनुसार – “ऐसे सभी करार जो व्यक्तियों की विवाह करने की स्वतंत्रता को अवरोधित करते हैं या जो दोनों या एक पक्षकार को अनेतिक जीवन बिताने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, शून्य है।”

कानून विवाह के बारे में व्यक्तियों को स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान करना है। कोई भी ऐसा करार जो विवाह के अवरोधार्थ है या विवाह के संबंध में चुनाव की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगता है, अवैध होगा। कोई भी व्यक्ति कानून व्यापार विवाह करने के लिए बाध्य नहीं है, किन्तु कोई ऐसा करार जिसके व्यापार किसी व्यक्ति को विवाह न करने के लिए बाध्य किया जाय या जिसके व्यापार उसके चुनाव करने की स्वतंत्रता को अवरुद्ध किया जाय, लोकनीति के विरुद्ध होने के कारण अवैध होता है।

### **व्यापार के अवरोधार्थ करार शून्य होता है (Agreements in restraint of trade are void)**

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 27 के अनुसार – प्रत्येक करार, जिससे कि कोई व्यक्ति किसी प्रकार की विधिपूर्ण वत्ति, व्यापार या कारबार करने से अवरुद्ध होता है, अवरोध के विस्तार तक शून्य है।”

इस प्रकार के व्यापार के अवरोधार्थ करार ऐसा करार होता है जिसमें एक पक्षकार दूसरे पक्षकार से उसकी अन्य पक्षकारों से जैसे चाहे व्यापार करने की स्वतंत्रता को निर्बन्धित (restrict) करने का करार करता है।

प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जैसे चाहे, जहाँ चाहे विधिपूर्ण व्यापार कर सकता है और ऐसा करार जो इस अधिकार में हस्तक्षेप करता है व्यापारिक अवरोध सबंधी करार कहलाता है। ये करार इसलिए शून्य होते हैं क्योंकि ये सार्वजनिक नीति के विरुद्ध होते हैं। “व्यापार के अवरोधार्थ करार व्यापार की दशाओं में परिवर्तन के अनुरूप समयानुसार परिवर्तित होता रहा है।” – ऐन्सन

इंग्लैण्ड में व्यापार के सभी अवरोधों को चाहे वे सामान्य हो या आंशिक, शून्य घोषित किया जाता था। परन्तु व्यापार की बदलती हुई दशाओं के कारण इस मत में संशोधन किया गया तथा सामान्य और आंशिक अवरोध में भेद स्थापित किया गया। ऐसा अवरोध जो सामान्य है, शून्य घोषित किया गया तथा आंशिक अवरोध को यदि वह युक्तियुक्त है तथा सार्वजनिक नीति के विरुद्ध नहीं है, वैध घोषित किया गया।

इस सबंध में नारडेन फेल्ड बनाम गन्स तथा एम्युनिशन कं.लि. 1894 के बाद का उल्लेख करना जरूरी होगा।

**अपवाद** – धारा 27 में कीतिस्व (goodwill) के संबंध में एक अपवाद दिया गया है जो निम्न प्रकार है— यदि कोई व्यक्ति व्यापार की कीर्तिस्व बेचता है तो वह केता के साथ एक विशेष सीमा के अंदर उसी प्रकार का व्यापार उस समय तक न करने का करार कर सकता है जब तक केता वैसा व्यापार उस जगह पर करता रहता है, शर्त यह है कि व्यापार के स्वरूप के ध्यान में रखते हुए न्यायालय की दृष्टि में वे प्रतिबंध उचित हों।

उपर्युक्त अपवाद के अतिरिक्त न्यायालय ने न्यायिक निर्वचन व्वारा भी कुछ अपवादों को स्वीकार किया है जो निम्नलिखित है –

1. **सेवाकाल के दौरान अवरोध (restraint during term of service)** – सेवाकाल में अवरोध, अवरोध के स्वरूप के अंतर्गत नहीं है और इसलिए वह शून्य नहीं है। यदि एक सेवक अपने मालिक से सेवाकाल के दौरान किसी अन्य सेवा में प्रवेश न करने का करार करता है तो वह शून्य नहीं है, किन्तु एक व्यक्ति अपने भूतपूर्व स्वामी व्वारा सेवा अवधि को समाप्त होने के बाद अवरोधित किया जाता है तो ऐसा करार शून्य है।
2. **व्यापारिक समुच्चय (Trade combination)** – इस धारा के अंतर्गत ऐसा करार शून्य घोषित नहीं किया गया है जो व्यापारी अपना माल निश्चित मूल्य से कम मूल्य पर न बेचने, लाभ को सामान्य निधि में जमा कर देने और व्यापार तथा लाभ उनके अनुपात के अनुसार विभाजित कर देने के लिए करते हैं तथा जो सार्वजनिक हित के विपरीत नहीं है।  
परन्तु जहाँ संगठन एकाधिकार स्थापित करने के लिए बनाया जाता है वहाँ करार शून्य होगा।
3. यदि किसी वस्तु का निर्माता ऐसा करार करता है कि वह अपने व्वारा उत्पादित वस्तुओं को किसी अमुक व्यापारी को ही विक्रय करेगा तो वह करार शून्य नहीं होगा।

### **वैध कार्यवाहियों के अवरोधार्थ करार (Agreements in restraint of legal proceedings)**

यदि पक्षकारों व्वारा वैधानिक कार्यवाहियों में, रुकावट डाले जाने के लिए करार किया जाता है अर्थात् कोई करार ऐसा किया जाता है जिससे वैधानिक कार्यवाही में रुकावट पड़ सकती है तो ऐसा करार शून्य होता है क्योंकि कानून ऐसे किसी करार को सहन नहीं कर सकता जो कि न्यायालय के क्षेत्राधिकार का अपवर्जन करता हो परन्तु इसके निम्नलिखित दो अपवाद हैं—

1. किसी उपबन्ध व्वारा यह प्रावधान रखा जाना कि कार्यवाही के पहले विवाचक (Arbitrator) व्वारा निर्णय दिया जाना आवश्यक है।
2. यह प्रावधान कि दावा तब तक उत्पन्न नहीं होगा जब तक कि वह लिखित न हो तथा मर्यादित अवधि के भीतर विवाचक नियुक्त न किया जाय।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 28 के अनुसार, “प्रत्येक करार जिससे कि उसमें कोई पक्षकार किसी संविदा के अधीन या बारे में अपने अधिकारों को मामूली अभिकरणों में प्राप्तिक, वैध कार्यवाहियों व्वारा अनुपालन कराने में सम्पूर्ण रूपेण अवरुद्ध है या जो उस समय को, जिसके भीतर कि वह अपने अधिकारों को इस प्रकार अनुपालन करा सकता है मर्यादित कर देता है उस विस्तार तक शून्य है।”

### **वैध कार्यवाहियों के अवरोधार्थ करारों की वैधता (Validity of agreements in restraint of legal proceedings)**

1. जो विवाद पैदा हो उन्हें विवाचन (arbitration) के लिए सौंपने की संविदाएँ— यदि पक्षकार आपस में यह करार करते हैं कि उनके बीच यदि भविष्य में कोई विवाद उत्पन्न होता है तो वह उसको निपटाने के लिए न्यायालय की शरण नहीं ले रहे बल्कि उसे पंचायत के सुपुर्द कर देंगे और पंच जो निर्णय देंगे व उनको मान्य होगा तो ऐसा करार वैध होगा।
2. जो प्रश्न पहले ही पैदा हो गये हो उन्हें निर्देशन की संविदाएँ— धारा 28 किसी एसी लेखनबद्ध संविदा को अवैध नहीं करेगी जिससे की दो या अधिक व्यक्ति किसी प्रश्न को, जो कि उनके बीच पहले ही पैदा हो गया है, विवाचन निर्णय के लिए निर्देशों के करने के बारे में तत्समय प्रवृत्ति किसी विधि के उपबन्धों को ही प्रभावित करेगी।

**अनिश्चितता से संबंधित विधि (Law relating to vagueness)** – धारा 2 (h) में संविदा की जो परिभाषा दी गयी है उससे यह स्पष्ट होता है कि संविदा ऐसा करार होता है जो विधि व्वारा प्रवर्तीनीय होता है। अतः करार का निश्चित होना बहुत आवश्यक है, यदि करार का अर्थ अनिश्चित होगा या निश्चित किये जाने योग्य नहीं होगा तो न्यायालय व्वारा उसको प्रवृत्ति नहीं कराया जा सकेगा।

इसलिए भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 29 में स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि करार का अर्थ निश्चित नहीं होता तो वह शून्य माना जायेगा। इसी धारा के अनुसार – “वे करार जिनका अर्थ निश्चित नहीं है या निश्चित किये जाने योग्य नहीं है, शून्य होते हैं।”

(“Agreements the meaning of which is not certain or capable of being made certain, are void.”)

**बाजी की संविदा (Wagering contract)** – बाजी दो पक्षकारों के बीच होने वाला वह करार है जिसके परिणामस्वरूप घटना का निर्णय एक प्रकार से होने पर प्रथम पक्षकार दूसरे पक्षकार को एक निश्चित धनराशि देता है और उसके विपरीत घटना होने पर दूसरा पक्षकार प्रथम पक्षकार को

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

निश्चित धनराशि देता है। बाजी वह करार है जो किसी अनिश्चित घटना के निश्चय या निर्णय पर धन (मूल्य) दिये जाने के लिए किया जाता है। इस प्रकार के करार की यह विशेषता होती है कि इसमें अक्सर पारस्परिक लाभ या हानि का अवसर होता है और इसमें एक ऐसी घटना होती है जिसके घटित होने पर कुछ दिया जाना चाहिए और वह जरूरी होता है कि वह घटना अनिश्चित या संदिग्ध हो।

**उदाहरण** – राम और श्याम यह करार करते हैं कि यदि अमुक दिन वर्षा होगी तो राम श्याम को 100 रुपये देगा, यदि नहीं होगी तो श्याम राम को 100 रुपये देगा। वास्तव में यह करार बाजी है क्योंकि जिस घटना पर धन दिया जाने वाला है वह अनिश्चित या संदिग्ध है और लाभ या हानि का पारस्परिक अवसर है – एक को लाभ तो दूसरे को हानि है अर्थात् एक को लाभ होगा तो दूसरे को हानि।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 30 के अंतर्गत बाजी लगाने की अनुरीति के करार शून्य होते हैं, और किसी चीज के प्रत्युद्धरण के लिए, जिसके बारे में अभिकथित है कि बाजी लगाकर जीती गयी है, या जो कि किसी व्यक्ति को किसी ऐसे खेल के या अन्य अनिश्चित घटना के, जिसके बारे में कि बाजी लगायी गयी है, फलाश्रित रहने के लिए न्यस्त की गयी है, कोई वाद न चलाया जायेगा।

**ऐन्सन महोदय** के अनुसार – “बाजी एक अनिश्चित घटना के अवधारण या निश्चय होने पर द्रव्य या द्रव्य जैसी मूल्यवान वस्तु के देने की प्रतिज्ञा होती है। (“Wager is a promise to give money or money's worth upon the determination or ascertainment of an uncertain event.”)

धारा 30 के अवलोकन करने पर पता चलता है कि बाजी की संविदा उस समय होती है जबकि पक्षकार शर्तों के अनुपालन करने अथवा न करने के लिए किसी अनिश्चित घटना के घटित होने अथवा न होने को आधार बनाते हैं। इसमें धन या धन का मूल्य देने की प्रतिज्ञा, किसी अनिश्चित घटना के घटने या न घटने पर आधारित होती है। संविदा के पक्षकारों की हार-जीत के समान अवसर होते हैं तथा एक की जीत दूसरे की हार होती है।

**बाजी के मौलिक तत्व** इस प्रकार है –

1. लाभ अथवा हानि
2. अनिश्चित घटना
3. किसी अन्य हित का न होना
4. किसी पक्षकार का उस घटना पर कोई साम्पत्तिक स्वत्व न हो

**बाजी संविदा की वैधता (Legality of a wagering contract)** – बाजी संविदा के मूल तत्व निम्नलिखित हैं –

1. इस प्रकार के करार में रुपया या अन्य वस्तु देने का वायदा होना चाहिए।
2. रुपया या अन्य वस्तु देने या न देने की शर्त किसी घटना के घटित होने या न होने पर आधारित होनी चाहिए।
3. घटना अनिश्चित होना चाहिए।
4. इस प्रकार के करार में दोनों व्यक्तियों में से किसी के हारने या जीतने की सम्भावना होनी चाहिए।
5. ऐसे करार में एक व्यष्टि की हार तथा दूसरे व्यष्टि की जीत होनी चाहिए।
6. ऐसा करार करते समय दोनों पक्ष के व्यक्तियों की इच्छा बाजी लगाने की होनी चाहिए।
7. ऐसे करार में दोनों पक्षों की घटना में दौव के अतिरिक्त किसी बात में दिलचस्पी नहीं होनी चाहिए। केवल घटना के घटित होने पर हार-जीत की ही दिलचस्पी होनी चाहिए।

**घुड़दौड़ के लिए कठिपय पुरस्कारों के पक्ष में अपवाद** – इस धारा के बारे में यह न समझा जायेगा कि ऐसे चन्दे या अंशदान को, या चंदा देने या अंशदान करने के ऐसे करार को, जो कि किसी घुड़दौड़ के विजेता या विजेताओं को दी जाने वाली पौंछ सौ रुपये या अधिक की रकम की कीमत वाली किसी प्लेट, पुरस्कार या धनराशि के लिए दिया गया है, या की गई है, विधि विरुद्ध कर दती है।

**भारतीय दण्ड संहिता की धारा 294 (क) का प्रभावित न होना** – इस धारा की कोई बात घुड़दौड़ से संबंधित किसी संव्यवहार की, जिसे की भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 294-क लागू है, वैध करने वाली नहीं समझी जायगी।

**बाजी संविदाएँ शून्य या अवैधानिक (Wagering contracts void or illegal)** – बम्बई में बाजी संविदाएँ अवैधानिक हैं, किन्तु दूसरे राज्यों में शून्य हैं।

**बीमा संविदाएँ (Insurance Contracts)** – बीमा की संविदा बाजी की संविदा न होकर क्षतिपूर्ति की संविदा है। बीमा पालिसियों किसी भावी घटना के घटित होने पर जो अनिश्चित होती है जैसे अग्निकांड या दुर्घटना इत्यादि के मामले में, रुपये के भुगतान का उपबन्ध करती है। **ऐन्सर** के अनुसार – बीमे की संविदाएँ बाजी लगाने वाली संविदाओं की भाँति प्रतीत होती है, परन्तु वह वास्तव में भिन्न प्रकार के संव्यवहार होते हैं।

**लॉटरी (Lottery)** – भारतीय दण्ड संहिता की धारा 294-क लाटरी रखना, लाटरी खोलना या लाटरी निकालना दण्डनीय घोषित करती है। लाटरी का व्यापार बाजीयुक्त संव्यवहार है। इसलिए लाटरी के टिकट का कय-विकय अमान्य है और यदि किसी लाटरी से इनामी टिकट निकलता है और टिकट धारण करने वाला व्यक्ति इनाम जीतता है तो उसे इनाम के दावे को अदालत द्वारा प्रवर्तित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। जहाँ लाटरी के टिकट का कय-विकय सरकार द्वारा प्राधिकृत किया गया है, वहाँ भी टिकटों का कय-विकय मान्य नहीं होगा। सरकार की अनुमति का सिर्फ यह प्रभाव होता है कि लाटरी का धारक दण्डपाराध (criminal offence) का दोषी नहीं होगा।

**साधारण बोध की शब्द-पहेलियाँ (Commonsense crossword Puzzles)** – प्रत्येक मामले में यह कहना सरल नहीं है कि वास्तव में एक साधारण बोध की शब्द-पहेली एक लॉटरी या वैध संव्यवहार है। कसौटी यह है कि क्या पुरस्कार का जीतना भाग्य या संयोग पर निर्भर करता है ? यदि हॉ, तो यह लाटरी है और इसलिए बाजी-संव्यवहार है जो शून्य है। यदि पुरस्कार का जीतना दक्षता तथा बुद्धि पर निर्भर करता है तो यह एक वैध संव्यवहार है।

**सट्टा संविदाएँ (Speculative Contracts)** – सट्टा-संविदाएँ बाजी संविदाएँ नहीं हैं जब तक कि संविदा करने वाले दोनों पक्षकारों का आशय संविदा करते समय ऐसा न हो कि किसी भी अवस्था में एक-दूसरे से प्रदान (delivery) की मांग न की जायगी।

**पक्की और कच्ची आढ़त करार :** पक्की आढ़त – यह पक्का आढ़तिया द्वारा किया गया करार होता है। **देसाई** कहते हैं कि "A Pakka adatiya in Bombay market is an agent who undertakes or guarantees that delivery should, on due date be given or

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

taken at the price at which the order was accepted or difference paid, he undertakes to find goods for cash, or cash for goods or to pay the difference." पक्का आढ़तिया संविदा के पलान का समाश्वासन अपने निजी स्वामी तथा अन्य पक्षकार को दता है जिससे कि वह संविदा करता है। वह अपनी निजी सामर्थ्य से संविदा का एक पक्षकार स्वयं होता है जबकि वह अन्य पक्षकार से संविदा अपने स्वामी के आदेशों की पूर्ति और पालन के लिए करता है।

बम्बई के बाजार में वाणिज्यिक व्यापार के संचालन की रीति में पक्की आढ़त का व्यवहार एक वैध तरीका है।

**कच्ची आढ़त** – यह कच्चा आढ़तिया द्वारा किया गया करार होता है। अपने स्वामी के आदेशों के अनुसार कच्चा आढ़तिया अन्य पक्षकारों के साथ संविदा करता है तो वह संविदा के पालन का उन्हें समाश्वासन देता है, किन्तु अपने स्वामी को नहीं। वह वास्तव में एक अभिकर्ता होता है यद्यपि वह संविदा के पालन का समाश्वासन देता है। कच्ची आढ़त की संविदा को बाजी संविदा नहीं माना गया है।

**तेजी-मंदी संव्यवहार** – तेजी-मंदी संव्यवहारों को आरम्भ में बाजी का करार माना जाता था, लेकिन बाद में यह धारण परिवर्तित हो गयी। तेजी-मंदों के संव्यवहारों को दो कारणों से बाजी संविदा नहीं माना जाता है –

1. तेजी-मंदी के सौदे के स्वरूप को समझा जा सकता है, एवं
2. ऐसे सौदे को परिदान करके संविदा को सम्पन्न किया जा सकता है। लेकिन जहाँ पक्षकारों का उद्देश्य केवल मात्र करार से सर्बंधित कीमत के अंतर का लनदेन करना रहा हो तथा वस्तुओं के लेन-देन का तनिक भी आशय नहीं रहा हो, वहाँ उसे बाजी संविदा माना जायगा।

### समाश्रित संविदाएँ (धारा 31 से 36)

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 31 के अनुसार "आकस्मिकताश्रित संविदा" ऐसी संविदा की सम्पादिक (collateral) किसी घटना के होने या न होने पर किसी बात को करने या न करने की संविदा है।

#### आकस्मिकताश्रित संविदा के आवश्यक तत्व

1. कुछ करने या न करने की संविदा
2. यदि कुछ घटना घटती है या नहीं घटती है तथा
3. वह घटना ऐसी संविदा की आनुषंगिक होनी चाहिए।

#### आकस्मिकताश्रित अथवा सांयोगिक संविदा से सर्बंधित नियम –

1. किसी घटना के होने पर आश्रित संविदाओं का अनुपालन करना – भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 32 के अनुसार किसी अनिश्चित भावी घटना के होने पर किसी बात को करने या न करने की आकस्मिकताश्रित संविदाओं का अनुपालन, जब तक कि और यदि वह घटना हो नहीं जाती, विधि द्वारा नहीं कराया जा सकता है। यदि वह घटना असम्भव हो जाती है तो ऐसी संविदाएँ शून्य हो जाती हैं।
2. किसी घटना के न होने पर आश्रित संविदाओं का अनुपालन करना – भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 33 के अनुसार – "किसी अनिश्चित भावी घटना के न होने पर किसी बात को करने या न करने की आकस्मिकताश्रित संविदाओं का अनुपालन जबकि उस घटना का होना असम्भव हो जाता है, और न कि उससे पूर्व कराया जा सकता है।"
3. जिस घटना पर संविदा आश्रित है, यदि वह किसी जीवित व्यक्ति का भावों आचरण है तो वह घटना कब असम्भव समझी जायेगी— धारा 34 के अनुसार यदि यह भावी घटना, जिस पर कि कोई संविदा आश्रित है, वह अनुरीति है जिसमें कि कोई व्यक्ति अनुलिखित समय पर कार्य करेगा तो उस घटना के बारे में तब यह समझा जायेगा कि वह असम्भव हो गयी है जबकि ऐसा व्यक्ति कोई ऐसी बात करता है जिससे यह असम्भव हो जाता है कि वह किसी निश्चित समय के भीतर या आगे की ओर आकस्मिकताओं के अधीन कार्य करने से अन्यथा, वैसा करेगा।
4. जो संविदाएँ नियत समय के भीतर उल्लेखित घटना के होने पर आश्रित हैं वे कब शून्य हो जाती है? — भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 35 के अनुसार – किसी उल्लेखित अनिश्चित घटना के किसी नियत समय के भीतर होने पर किसी बात को करने या न करने की आकस्मिकताश्रित संविदाएँ यदि नियत समय के अवसान पर ऐसी घटना नहीं होती है या यदि नियत समय से पूर्व ऐसी घटना असम्भव हो जाती है, शून्य हो जाती है। किसी उल्लेखित अनिश्चित घटना के नियत समय के भीतर न होने पर किसी बात को करने या न करने की आकस्मिकता संविदा का अनुपान, जबकि नियत समय का अवसान हो चुका है और ऐसी घटना नहीं हुई है या नियत समय के अवसान से पूर्व यह निश्चय हो जाता है कि ऐसी घटना नहीं होगी, विधि द्वारा कराया जा सकेगा।
5. असम्भव घटनाओं पर आश्रित करार शून्य है भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 36 के अनुसार किसी असम्भव घटना के घटित होने पर किसी बात को करने या न करने की आकस्मिकताश्रित करार, भले ही घटना की असम्भावना करार के पक्षकारों को उसके किये जाने के समय ज्ञात हो या नहीं, शून्य है।

**बाजी संविदा तथा आकस्मिकताश्रित संविदा (Wagering contract and contingent contract)** – बाजी संविदा से अभिप्राय ऐसे करार से होता है जिसमें एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी अनिश्चित घटना के घट जाने पर कुछ धन देगा यदि वह अनिश्चित घटना घटित नहीं है तो प्रथम पक्षकार दूसरे पक्षकार को धन देगा। इस प्रकार बाजी की संविदा में एक पक्षकार को लाभ होता है तथा दूसरे पक्षकार को हानि होती है। इसके विपरीत आकस्मिकताश्रित संविदा कुछ करने या न करने के लिए संविदा है जिसकी यह शर्त होती है कि उसका करना या न करना उस संविदा की सम्पादिक घटना से घटित होने या न घटित होने पर निर्भर करता है। (धारा 31)

**बाजी सामान्यतः** अनिश्चित भावी घटना पर लगायी जाती है। परन्तु यह भूतकाल की घटना के विषय में भी हो कसती है। परन्तु संविदा अधिनियम की धारा 31 से यह स्पष्ट है कि आकस्मिकताश्रित संविदा में अनिश्चित घटना संदेव भविष्य में की जानी चाहिए।

बाजी लगाने की अनुरीति के करार शून्य होते हैं तथा किसी वस्तु के प्रत्युद्धरण के लिए जिसके बारे में अभिकर्ता है कि वह बाजी लगाकर जीती गयी है, या जो कि किसी व्यक्ति को किसी ऐसे लेख के या अन्य अनिश्चित घटना के जिसके बारे में कि बाजी लगायी गयी है, फलाश्रित रहने के लिए न्यस्त की गयी है कोई वाद नहीं चलाया जायेगा। (धारा 30)

केवल घुड़दोड की धारा 30 के अंतर्गत अपवादस्वरूप स्वीकार किया गया है। सांयोगिक संविदाएँ स्वयं में शून्य नहीं होती परन्तु यदि घटना असम्भव हो जाये तो ऐसी संविदा शून्य हो जाती है। इसके अलावा किसी उल्लेखित अनिश्चित घटना के किसी नियत समय के भीतर होने पर किसी बात का करने

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

या न करने की समाश्रित संविदाएँ यदि नियत समय के अवसान पर ऐसी घटना घटित नहीं होती है या यदि नियत समय से पूर्व ऐसी घटना असम्भव हो जाती है, तो शून्य हो जाती है। (धारा 35)

### **संविदा पालन का अर्थ (Meaning of performance of contract)**

एक वैध संविदा द्वारा पक्षकारों के अधिकार एवं आभार (दायित्व) का जन्म होता है। संविदा एक पक्षकार को कुछ अधिकार देता है तो दूसरे को किसी दायित्व में बंधता है। संविदा का जन्म पक्षकारों के वचन से होता है तथा प्रत्येक पक्षकार का यह दायित्व होता है कि वह अपने वचन को पूर्ण करें अर्थात् एक पक्षकार अपना वचन पूरा करे तथा दूसरा पक्षकार अपना वचन पूरा करें क्योंकि एक का वचन दूसरे के लिए प्रतिफल बनता है।

**अपवाद** – लेकिन इस सामान्य सिद्धांत के अपवाद भी है। निम्नलिखित परिस्थितियों में कोई अजनबी (तीसरा पक्षकार) भी संविदा के पालन की मांग कर सकता है –

1. जहाँ न्यास हो (Trust)
2. जहाँ भार का सृजन किया जाय (Charge)
3. बंटवारे में हित सुरक्षित होना
4. विवाह के करार की कोई शर्त
5. किसी अन्य पक्षकार को अधिकार देना

**संविदा का उन्मोचन (discharge)** – भारतीय संविदा विधि के अंतर्गत एक संविदा का उन्मोचन निम्न तारीकों में से किसी भी एक तरीके द्वारा हो सकता है –

1. पालन
2. पालन की असम्भवता (Impossibility of Performance)
3. करार द्वारा (By Agreement)
4. उल्लंघन द्वारा (By Breach) तथा
5. विधि के प्रवर्तन द्वारा (By operation of a Law)

1. **संविदा के पालन द्वारा (By performance)** – एक संविदा का उन्मोचन उनके पालन द्वारा हो सकता है। धारा 37 के अनुसार, किसी संविदा के पक्षकारों को अपनी क्रमागत प्रतिज्ञाओं का पालन, जब तक कि ऐसा पालन इस अधिनियम या किसी अन्य विधि के अधीन अभिक्षम्य नहीं कर दिया गया है, या तो करना चाहिए या करने की पेशकश करनी चाहिए। प्रत्येक संविदा में प्रतिज्ञाकर्ता और प्रतिज्ञाग्रहीता किसी न किसी कार्य को पूरा करने के लिए एक-दूसरे को वचन देते हैं। जब वे अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर देते हैं तो संविदा समाप्त हो जाती है अतः जब संविदा में कोई पक्षकार अपना कर्तव्य पूरा कर देते हैं तो वे अपने दायित्व से छुटकारा पा जाते हैं और संविदा का उन्मोचन हो जाता है।

2. **पालन की असम्भवता (Impossibility of Performance)** यदि किसी संविदा का पालन करना असम्भव हो जाता है तो संविदा का उन्मोचन हो जाता है। अधिनियम की धारा 56 के अनुसार ऐसे कार्य को करने की संविदा, जो कि संविदा करने के पश्चात् असम्भव या किसी ऐसे घटना के कारण जिसका निवारण प्रतिज्ञाकर्ता नहीं कर सकता विधि विरुद्ध हो जाती है तथा शून्य हो जाती है जबकि वह कार्य विधि विरुद्ध तथा असम्भव हो जाता है।

3. **करार द्वारा (By agreement)** – एन्सन के अनुसार “संविदा पक्षकारों के करार पर आधारित होती है, चूंकि वह अपने करार से बाध्य होते हैं उनका उन्मोचन भी करार द्वारा हो सकता है।

(अ) **परित्याग (Waiver)** – संविदाओं का उन्मोचन पक्षकारों के बीच करार द्वारा हो सकता है तथा वे उन पर बाध्यकारी नहीं होगी। यदि पालन के लिए मौंग करने का हकदार पक्षकार अपने अधिकारों का परित्याग करने को रजामन्द हो जाता है तो दूसरे पक्षकार द्वारा उन्मोचन हो जाता है।

(ब) **नवीकरण (Novation)** – संविदा का उन्मोचन नवीकरण द्वारा भी हो सकता है। धारा 62 के अनुसार “यदि किसी संविदा में कोई पक्षकार उसके लिए एक नयी संविदा प्रतिस्थापित करने या उसे विखण्डित या परिवर्तित करने का करार करते हैं तो मूल संविदा का पालन करना आवश्यक नहीं है।

(स) **संविदा अधिनियम की धारा 63 के अनुसार,** “प्रत्येक प्रतिज्ञाग्रहीता अपने से की गयी किसी प्रतिज्ञा को पालन का पूर्णतः या भागतः अभिमोचन कर सकेगा या ऐसे पालने के लिए समय बढ़ा सकेगा, या उनके स्थान पर किसी तुष्टि को, जिसे वह ठीक समझता है, प्रतिग्रहीत कर सकगा।

4. **संविदा के उल्लंघन द्वारा (By breach of contract)** – जब संविदा में कोई पक्षकार संविदा को भंग कर देता है तो संविदा का उन्मोचन हो जाता है। यह भंग या उल्लंघन दो प्रकार का हो सकता है –

1. **पूर्वानुमानिक भंग (Anticipatory Breach)** जब कोई व्यक्ति संविदा के पालन से पूर्व ही भंग कर देता है तो यह पूर्वानुमानिक भंग कहलाता है। संविदा अधिनियम की धारा 39 के अनुसार, “जबकि किसी संविदा में कोई पक्षकार ने अपनी पूरी प्रतिज्ञा का पालन करने से इन्कार कर दिया है या अपने को निर्याय बना लिया है तब प्रतिज्ञाग्रहीता, जब तक कि उसने उसको चालू रखने की शब्दों द्वारा या आचरण द्वारा अपनी उपमति प्रकट न कर दी हो, संविदा का अन्त कर सकेगा।”

2. **पालन के दौरान भंग** – संविदा भंग संविदा के पालन के दौरान भी की जा सकती है। यदि संविदा के पालन के दौरान कोई पक्षकार पालन करने से इन्कार कर देता है तो दूसरा पक्षकार अपने द्वारा संविदा के पालन से मुक्त हो जाता है तथा भंग के लिए वाद चलाने की अधिकारी हो जाता है।

5. **विधि के प्रवर्तन द्वारा (By operation of Law)** विधि के प्रवर्तन द्वारा संविदा का उन्मोचन निम्नलिखित प्रकार से हो सकता है –

(अ) **विलय (Merger)** – यदि एक निम्नतर प्रतिभूमि के स्थान में एक उच्चतम प्रतिभूमि प्रतिग्रहीत की जायेगी, तो वह प्रतिभूमि जो कानून की निगाह में लघुतर (Inferior) है, तथ्यतः उच्चतर में विलय कर जाती है और समाप्त हो जाती है।

(ब) **न्यायालय के निर्णय द्वारा संविदा का उन्मोचन हो जाता है।**

(स) **लिखित विलेख को अनधिकृत रूप से परिवर्तित या रद्द किये जाने से भी संविदा का उन्मोचन हो जाता है।**

(द) दिवाला (**Bankruptcy**) न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को दिवालिया घोषित किये जाने पर वह व्यक्ति संविदा के अंतर्गत अपने ऋणों और दायित्वों से उन्मुक्त हो जाता है।

**निविदा के तत्व (Elements of Tender)** – धारा 38 में आगे कहा गया है कि ऐसी प्रत्येक पेशकश के लिए निम्नलिखित तत्व आवश्यक है –

1. वह शर्त रहित (unconditional) होने चाहिए। निविदा बिना किसी शर्त के होना चाहिए।
2. वह उचित समय और स्थान पर तथा ऐसी परिस्थितियों के अधीन की जानी चाहिए, कि उस व्यक्ति को, जिससे वह की गयी है वह निश्चित करने का युक्तियुक्त अवसर हो। कि वह व्यक्ति जिसके द्वारा वह की गयी है, वही और उसी समय उस बात को, जिसके कि वह अपनी प्रतिज्ञा से करने को बाध्य है, पूर्णतया करने को समर्थ और रजामन्द है।
3. यदि वह पेशकश प्रतिज्ञाग्रहीता को कोई चीज परिदृष्ट करने के लिए है तो प्रतिज्ञाग्रहीता को यह देखने का युक्तियुक्त अवसर होना चाहिए कि पेशकश की गयी चीज वह चीज है जिसे परिदृष्ट करने के लिए प्रतिज्ञाकर्ता अपनी प्रतिज्ञा द्वारा बाध्य है।
4. कई संयुक्त प्रतिज्ञाग्रहीता में से एक से पेशकश करने का वही वैध परिणाम है जो कि सबसे की गयी पेशकश का है।

**संविदा का प्रत्याशित भंग (Anticipatory breach of Contract)** – एक संविदा का प्रत्याशित भंग संविदा का भंग है जो पालन का निर्धारित समय आने के पहले या तो पक्षकार द्वारा अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने से इन्कार करने या अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने से अपने को निर्याग्य (असमर्थ) बनाने से घटित होता है।

#### पीड़ित पक्षकार के विकल्प

(अ) या तो विखण्डन करने का चुनाव करता है और यद्यपि संविदा के पालन का समय अभी नहीं हुआ है तो भी वह संविदा को समाप्त हुआ मान सकता है और वह तुरंत प्रतिकर के लिए वाद दायर कर सकता है।

(ब) वह संविदा को विखण्डन न करने का फैसला कर सकता है और संविदा को अब भी प्रवर्तनीय मान सकता है और निश्चित तारीख पर वचनकर्ता फिर भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने से इन्कार कर देता है तो भंग होने पर पैदा होने वाले अधिकारों का प्रयोग कर सकता है।

**संविदा किसके द्वारा पालन की जानी चाहिए** – भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 40 उन व्यक्तियों से बरतती है जिनके द्वारा प्रतिज्ञा का पालन होता है। इसके अनुसार, यदि मामले के स्वरूप से यह प्रतीत हो कि किसी संविदा के पक्षकारों का यह आशय था कि उसमें अन्तर्विष्ट किसी प्रतिज्ञा को स्वयं प्रतिज्ञाकर्ता द्वारा पालित की जानी चाहिए। दूसरे मामलों में प्रतिज्ञाकर्ता या उसके प्रतिनिधि उसका पालन करने के लिए किसी समय अन्य को नियोजित कर सकते हैं।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 46 के अनुसार – जहाँ कि प्रतिज्ञाकर्ता को अपनी प्रतिज्ञा का पालन प्रतिज्ञाग्रहीत द्वारा आवेदन किये जाने के बिना संविदा के अनुसार करना है और पालन के लिए कोई समय उल्लेखित नहीं है वहाँ वचनबद्ध का पालन युक्तियुक्त समय के भीतर करना पड़ेगा।

“समय संविदा का सार है”

“समय संविदा का सार है” इस कथन से आशय है कि जब दो पक्ष किसी करार को करते हैं तो किसी संविदा के अंतर्गत कर्तव्य–पालन के समय को संविदा की शर्त बनाया जा सकता है और यह समय संविदा का सार हो सकता है। जहाँ किसी संविदा के पक्षकारों का यह आशय हो कि समय संविदा का सार था, तो एक पक्षकार ने अपनी प्रतिज्ञा के विनिर्दिष्ट समय के भीतर पालन करने में असफल रहने पर संविदा दूसरे पक्षकार के विकल्प पर शून्यकरणीय हो जाती है। (धारा 55)

**संविदाओं की असम्भाव्यता (Impossibility of Contracts)** भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 56 असम्भव कार्य को करने के करार से संबंधित है। वास्तव में असम्भव कार्य करने की संविदा स्वयं शुरू होती है। ऐसा कार्य जो संविदा करते समय असम्भव न हो, किन्तु बाद में असम्भव हो जाता है अथवा ऐसी कोई घटना घटित हो जाए जिसका निवारण प्रतिज्ञाकर्ता नहीं कर सके और संविदा का कृत्य विधि विपरीत हो जावे तो संविदा शून्य हो जाएगी।

**संविदा की भग्नाशा (Frustration of contract)** – भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 56 का द्वितीय खण्ड ‘भग्नाशा’ के सिद्धान्त से व्यवहार करता है। यह निम्नलिखित रूप में है –

ऐसे कार्य को करने की संविदा, जो कि संविदा करने के पश्चात असम्भव या किसी ऐसी घटना के कारण, जिसका निवारण प्रतिज्ञाकर्ता नहीं कर सकता, विधि–विरुद्ध हो जाता है, तब शून्य हो जाती है जबकि वह कार्य असम्भव या विधि–विरुद्ध हो जाता है।

**भग्नाशा के आधार** – न्यायालय निम्नलिखित आधारों पर भग्नाशा के सिद्धान्त को लागू करते हैं –

(1) संविदा की विषय–वस्तु का नष्ट होना— जहाँ संविदा की विषय–वस्तु नष्ट हो जाती है वहाँ संविदा का पालन असम्भव हो जाता है तथा संविदा के पक्षकार अपने दायित्व से उन्मुक्त हो जाते हैं।

(2) किसी घटना का घटित न होना— संविदा का उन्मोचन हो जाता है जबकि ऐसी घटना जिसका घटना आव”यक है, घटित नहीं होती है।

(3) पालन के लिए असमर्थ हो जाना या प्रतिज्ञाकर्ता की मृत्यु हो जाना— सेवा सम्बन्धी मामलों में प्रतिज्ञाकर्ता के मर जाने या उसके असमर्थ हो जाने पर संविदा शून्य हो जाती है। जहाँ संविदा की प्रकृति और स्वभाव से व्यक्तिगत पालन की अपेक्षा प्रकट होती है, वहाँ यदि ऐसे व्यक्तिगत पालन की जिम्मेदारी उठाने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो संविदा शून्य हो जाती है।

**संविदा का नवीनीकरण**— “जब एक संविदा के अस्तित्व में होते हुए जहाँ उसके लिए एक नयी संविदा स्थापित की जाती है जो या तो उन्हीं पक्षकारों के बीच होती है या विभिन्न पक्षकारों के बीच होती है तथा जिसका प्रतिफल परस्पर प्राचनी संविदा का उन्मोचन करना होता है।” Sec 62

**नवोनीकरण सम्बन्धी नियम**— (1) संविदा के पक्षकार वही हो सकते हैं और पुरानी संविदा के स्थान पर नयी संविदा कर सकते हैं।

(2) नई और पुरानी दोनों संविदाओं की शर्त वही हो सकती है, पर पुराने पक्षकारों की जगह पर नये पक्षकार जगह ले सकते हैं।

**प्रतिवादी द्वारा प्रतिज्ञा के पालन का अभिमोचन या परिहार करने का अधिकार**— भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 63 के अनुसार–प्रत्येक प्रतिज्ञाकर्ता अपने से की गयी किसी प्रतिज्ञा के पालन का पूर्णतः या भागतः अभिमोचन या परिहार कर सकेगा ऐसे पालन के लिए समय को विस्तारित कर सकेगा, या उसके स्थान में किसी तुष्टि को, जिसे वह ठीक समझता है, प्रतिग्रहीत कर सकेगा।

**शून्यकरणीय संविदा के विखण्डन का परिणाम**— धारा 64 के अनुसार “जबकि कोई व्यक्ति जिसके विकल्प पर कोई संविदा शून्यकरणीय है, उसे विखण्डित करता है तब उसके दूसरे पक्षकार के लिए उसके अन्तर्विष्ट किसी प्रतिज्ञा का जिसमें कि वह प्रतिज्ञाकर्ता है, पालन करना आव”यक नहीं है।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

शून्यकरणीय संविदा को विखण्डित करने वाला पक्षकार, यदि उसने ऐसी संविदा के एक-दूसरे पक्षकार से तद्धीन कोई लाभ प्राप्त किया है, ऐसे लाभ को यथा”। वित उस व्यक्ति को, जिससे कि वह प्राप्त किया गया था, वापिस लौटा देगा।

**पक्षकार द्वारा धन वापस लेना—** भारतीय संविदा अधिनियम, की धारा 64 एवं 65 उन परिस्थितियों का वर्णन करती है जिसके अन्तर्गत संविदा का एक पक्षकार अपना धन वापस प्राप्त कर सकता है। निम्नलिखित परिस्थितियों में एक पक्षकार चुकाए हुए धन को वापस प्राप्त कर सकता है—

(1) एक शून्यकरणीय संविदा को भंग करने वाला पक्षकार यदि उसने संविदा के अधीन दूसरे पक्षकार से कोई धन या लाभ प्राप्त किया है, जहाँ तक हो सके ऐसा धन या लाभ उस दूसरे पक्षकार को जिसने उससे प्राप्त किया है, प्रत्यावर्तित करेगा।

(2) धारा 56 के अनुसार, जहाँ एक व्यक्ति ने ऐसी कोई बात करने की प्रतिज्ञा की है जिसका असम्भव व विधि विरुद्ध होना वह जानता था या युक्तियुक्त उद्यम से जाना जा सकता था और प्रतिज्ञाग्रहीता नहीं जानता था, वहाँ ऐसी संविद के अन्तर्गत यदि कोई धन प्राप्त किया है तो वह ऐसे व्यक्ति को जिससे उसने धन प्राप्त किया है वापस करने का बाध्य है।

(3) धारा 65 के अनुसार जबकि कोई करार शून्य पाया जाता है या जबकि कोई संविदा शून्य हो जाती है तब जिस व्यक्ति ने ऐसे करार या संविदा के अधीन कोई प्रलाभ प्राप्त किया है वह उस प्रलाभ को उस व्यक्ति को जिससे प्राप्त किया है प्रत्यावर्तित या उसके लिए प्रतिकर देने के लिए बाध्य है।

### संविदा कल्प (Quasi contract, Sec 68-72)

वास्तव में संविदा कल्प विल्कुल एक संविदा नहीं है बल्कि यह संविदा के सदृश होती है और समान प्रभाव उत्पन्न करती है।

**संविदा कल्प के विशिष्ट तत्व—** संविदा-कल्प के निम्नलिखित विशिष्ट तत्व हैं—

(i) धन के लिए अधिकार— ऐसा अधिकार सदैव धन के लिए तथा सामान्यतया परिनिर्धारित धन के लिए होता है।

(ii) करार द्वारा न होकर विधि के अधीन होना— यह अधिकार सम्बन्धित पक्षकारों के मध्य करार के अन्तर्गत न होकर विधि द्वारा आरोपित होता है। अतः इस सम्बन्ध में वह अपकृत्य के समान है।

(iii) अधिकार केवल विशिष्ट व्यक्तियों के विरुद्ध उपलब्ध होता है— यह अधिकार अपकृत्यों के समान समस्त विविध के विरुद्ध न होकर विशिष्ट व्यक्ति के विरुद्ध होता है। इस सम्बन्ध में यह संविदात्मक अधिकार की तरह है।

(1) संविदा करने में असमर्थ व्यक्ति को प्रदाय की गई आवश्यकताएँ— धारा 68

(2) उस व्यक्ति की भरपाई जो दूसरे द्वारा ऐसे शोध्य धन को देता है जिसकी देनगी में वह हितबद्ध है— sec 69

(3) निःशुल्क न होने वाले कार्य का फायदा उठाने वाले व्यक्ति की बाध्यता— sec 70

(4) वस्तु पाने वाले का दायित्व— जहाँ एक व्यक्ति किसी अन्य की वस्तुएँ पाता है और उन्हें अपनी अभिरक्षा में लेता है, उसी उत्तरदायित्व के अधीन है जिसके अधीन उपनिहिती होता है। धारा 71

(5) धारा 72 के अनुसार जिस व्यक्ति को भूल से या उत्पीड़न के अधीन धन दिया गया है या कोई चीज परिदत्त की गयी है उसे उस धन या चीज को वापस लौटाना पड़ेगा।

**खोए हुए माल के पाने वाले के कर्तव्य— धारा 71 के अनुसार**

(अ) वह उस वास्तविक स्वामी का खोजे जो कि उस वस्तु का मालिक है।

(ब) वस्तु की युक्ति देखभाल करे।

**संविदा भंग के उपचार—** संविदा भंग से व्यक्ति पक्षकार, अपने को हुई हानि की क्षतिपूर्ति के लिए दूसरे पक्षकार पर दावा कर सकता है व्यक्ति पक्षकारों को दूसरे पक्षकार के विरुद्ध निम्नलिखित उपचार प्राप्त है—

(1) क्षतिपूर्ति या हर्जाना (2) संविदा का विशिष्ट पालना (3) व्यादेश।

(1) **क्षतिपूर्ति या हर्जाना—** यह संविदा-भंग के सभी मामलों के लिए सामान्य उपचार है। जब संविदा के एक पक्षकार को संविदा भंग से हानि उठानी पड़ती है तो व्यक्ति पक्षकार अपने को हुई हानि के लिए दावा कर सकता है। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 73 में इसका उल्लेख है। धारा 73 के अनुसार—‘जबकि कोई संविदा भंग कर दी गई है तब वह पक्षकार, जो कि ऐसी भग्नता से हुई किसी ऐसी हानि या नुकसान के लिए, जो कि ऐसी घटनाओं के प्रायिक अनुक्रम में प्रकृत्या ऐसी भग्नता से उद्भूत हुआ है, अथवा जिसके बारे में पक्षकार उस समय, जबकि संविदा की गयी थी तय करते हैं कि संविदा भंग का संभाव्य फल वह हानि या नुकसान होगा, प्रतिकर पाने का हकदार है।

**नुकसान की दूरस्थता—** सामान्यतया वादी संविदा—भंग से उत्पन्न हुई हानि की पूर्ति के लिए उत्तरदायी है परन्तु वह उन नुकसानों को पूरा करने के लिए बाध्य नहीं है जो कि दूरस्थ है। विधि के इस सिद्धान्त को हैडले बनाम वेक्सनेल के वाद में ‘न्यायाधी’। एल्डरसन ने प्रतिपादित किया था।

इस वाद में दूरस्थ नुकसान से सम्बन्धित दो बातों का प्रतिपादन किया गया— (1) सामान्य नुकसान (2) विशेष नुकसान

(1) **सामान्य नुकसान—** सामान्य नुकसान पक्षकारों के उसे ज्ञान पर निर्धारित करता है हजो कि उन्हें संविदा करते समय होता है। सामान्य नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति उसी हालत में की जा सकती है जिसका ज्ञान संविदा करते समय दोनों पक्षकारों को हो।

(2) **विशेष नुकसान—** विशेष के लिए क्षतिपूर्ति केवल उसी हालत में प्राप्त की जा सकती है जिसकी पूर्व कल्पना वादी तथा प्रतिवादी ने संविदा करते समय कर ली हो संविदा का एक पक्षकार भग करने वाले पक्षकार से विशेष हानि का दावा कर सकता है, यदि उसेन संविदा करते समय दूसरे पक्षकार को यह नोटिस दिया हो कि ऐसा विशिष्ट नुकसान सम्बन्धित संविदा भंग का परिणाम होता है।

2. **संविदा का विशिष्ट पालन—** संविदा भग के लिए दूसरा उपचार संविदा का विशिष्ट पालन के लिए दावा करना है। संविदा भंग से पीड़ित पक्षकार न्यायालय से अनुरोध कर सकता है कि वह दूसरे पक्ष को बाध्य करे जिससे वह संविदा का विशिष्ट पालन करे। विशिष्ट अनुपालन के मामले में न्यायालय संविदा के पक्षकार को आदें। देता है कि वह संविदा का पालन करे। इस उपचार का स्वीकार किया जाना निम्नलिखित मर्यादाओं के अध्याधीन है—

(i) विशिष्ट पालन केवल वहीं स्वीकार किये जायेगे जहाँ हर्जाने के लिए पर्याप्त प्रतिकर नहीं है।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

(ii) विशिष्ट पालन वहाँ स्वीकार नहीं किया जावेगा जहाँ न्यायालय पालनकी देखभाल नहीं कर सकता।

**3. व्यादेश—** यह एक निषेधात्मक उपचार है। न्यायालय का एक आदेश है जो कि एक व्यक्ति को विशिष्ट कार्य करने से रोकता है या निषेध करता है। संविद—भंग के कुछ मामलों में न्यायालय संविदा—भंग का आशय रखने वाले पक्षकार का निग्रह अवरोध करते हुए एक व्यादेश प्रदान कर सकता है।

क्या वह पक्षकार, जो संविदा का यथाधिकार विखण्डन करता है, क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी है?

धारा 75 के अनुसार— ‘वह व्यक्ति जो किसी संविदा को अधिकारपूर्वक विखण्डित करता है, ऐसे नुकसान के लिए प्रतिकर पाने का हकदार है जो उसने संविदा के पालन न किये जाने से उठाया है।’

**निर्धारित हर्जाना और दण्ड शास्ति के बीच भेद—** भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 74 के अनुसार जबकि कोई संविदा भंग कर दी गयी है, तब यदि ऐसी भग्नता की अवस्था में दी जाने वाली रकम के रूप में कोई राणी संविदा में नामांकित है, या यदि शास्ति के रूप में कोई अनुबन्ध संविदा में अन्तर्विष्ट है तब भग्नता का परिवाद करने वाला पक्षकार चाहे यह सिद्ध किया गया हो या सिद्ध न किया गया हो कि उस भग्नता से वस्तुतः नुकसान या हानि हुई है उस पक्षकार से जिसने संविदा की है यथास्थिति उस प्रकार नामांकित रकम या अनुबन्ध—”शास्ति से अधिक न होने वाला युक्तियुक्त प्रतिकर पाने का हकदार होगा।”

**निर्धारित हर्जाना—** निर्धारित हर्जाना वह अनुबन्धित रकम है जिसे संविदा के पक्षकार संविदा भंग किए जाने की अवस्था में पीड़ित पक्षकार का नुकसान की पूर्ति हेतु निर्धारित करते हैं।

**दण्ड शास्ति—** शास्ति संविदा में उल्लिखित वह राणी है, जिसका उल्लेख संविदा के पालने की सुरक्षा के लिए किया जाता है। वह राणी पक्षकारों के आंशिक के अनुसार हर्जाने के अधिकारपूर्वक मूल्य तक होती है।

**योग्यतानुसार प्रदान (Quantum meruit Rule)—** इस अभिव्यक्ति का तात्पर्य है कि उतना जितने का वह अधिकार रखता है। अंग्रेजी विधि में का सिद्धान्त इस विवक्षित शर्त पर आधारित है कि जो पक्षकार सेवा से लाभ उठा रहा है, वह उसके लिए भुगतान का करार करता है।

### विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (SPECIFIC RELIEF ACT, 1963)

**अनुतोष का अर्थ (Meaning of Relief) —** इंग्लैण्ड में ‘अनुतोष’ शब्द से तात्पर्य उस उपचार से है जो न्याय के न्यायालयों के द्वारा वादार्थियों को प्रदान किया जाता है। जब किसी व्यक्ति के आचरण द्वारा वैधिक अधिकारों का अतिलंघन किया जाय तो पीड़ित व्यक्ति क्षतिपूर्ति अधिकारी होता है, क्योंकि ऐसा कोई अपकृत्य नहीं होता जिसका उपचार न हो। (*Ubi jus ibi remedium*)

ऐसे उपचारों अथवा अनुतोषों का विभाजन दो मुख्य भागों में किया जा सकता है— वैधिक अनुतोष तथा साम्यिक अनुतोष। वैधिक अनुतोष से तात्पर्य उन अनुतोष से है जो पहले सामान्य विधि के न्यायालयों में प्राप्त थे और साम्यिक अनुतोष से तात्पर्य उनसे है जिनका उपबन्ध साम्य के न्यायालयों के द्वारा किया जाता था।

**विनिर्दिष्ट अनुतोष का अर्थ —** Relief in specie अर्थात् वस्तु के रूप में अनुतोष। यह एक ऐसा उपचार है जिसके द्वारा किसी संविदा के पक्ष में उन कार्यों को करने के लिए विवश किया जाता है जैसा करना या न करना उन्होंने स्वीकार किया है। किसी अपकृत या क्षति के विरुद्ध न्याय के व्यवहार न्यायालयों द्वारा प्रयोग में लाये गये उपाय खूलतः दो वर्गों में आते हैं— (1) वे जिनके द्वारा कोई वादार्थी उसी वस्तु को प्राप्त कर लेता है जिसका वह अधिकारी होता है और (2) वे जिनके द्वारा उसी वस्तु को नहीं वरन् उसी के लिए प्रतिफल प्राप्त करता है। प्रथम उपचार विनिर्दिष्ट अनुतोष होता है और दूसरा प्रतिकारात्मक।

**विनिर्दिष्ट अनुतोष का वर्गीकरण (Classification of Specific Relief) —** सन् 1963 का विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, अधिनियम में संव्यवहृत मिन्न प्रकार के विशिष्ट सहाय्यों का प्रगणन करता है, ये हैं—

- (क) किसी सम्पत्ति का कब्जा लेकर उसका उसके अध्यर्थी को प्रदान, अर्थात् सम्पत्ति पर कब्जे की पुनः प्राप्ति। (धारा 5, 6, 7, 8)
- (ख) किसी पक्षकार को उसी कार्य के करने का आदेश जिसके कारण का उस पर दायित्व हो, संविदाओं का विनिर्दिष्ट पालन। (धारा 10 से 14)
- (ग) किसी पक्ष को उस कार्य को करने से रोकना जिसके न करने का उस पर दायित्व हो, यह निरोधक साहाय्य अर्थात् व्यादेश कहा जाता है। (धारा 36 से 42)

(घ) किसी क्षतिपूर्ति दिलाने के अतिरिक्त अन्य रीति से पक्षों के अधिकारों का अवधारण तथा उनकी घोषणा, अर्थात् घोषणात्मक डिक्रिय (धारा 34 तथा 35)

साम्यिक साहाय्य के इन चार वर्गों के अतिरिक्त अधिनियम में निम्नलिखित सम्मिलित है जिनका वह उपलब्ध करता है—

- (च) प्रलेखों का परिशोधन (धारा 26)
- (छ) संविदाओं का विखण्डन (धारा 28 से 30)
- (ज) प्रलेखों का रद्दकरण (धारा 31 से 33)

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 4 यह नकारात्मक उपबन्ध करती है कि “दण्ड—विधि के प्रवर्तन के प्रयोजन—मात्र के लिए विनिर्दिष्ट अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता।

**सम्पत्ति के कब्जे की पुनः प्राप्ति (Recovering possession of property)** विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम में अचल सम्पत्ति पर कब्जे की पुनः प्राप्ति के सबंध में दो प्रकार की कार्यवाही का उपबन्ध किया गया है। पहली कार्यवाही का उदय तब होता है जब ‘स्वत्व’ के आधार पर मॉग की जाय और दूसरी का जहाँ मॉग ‘कब्जे’ मात्र पर आधारित हो।

**स्वत्व के आधार पर वसूली —** धारा 5 के अनुसार किसी विनिर्दिष्ट अचल सम्पत्ति पर कब्जे के लिए हकदार व्यक्ति उसका प्रत्युद्धरण व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 द्वारा विहित रीति में कर सकेगा।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

(क) व्यक्ति – शब्द 'व्यक्ति' को जनरल क्लॉजेज ऐक्ट में इस प्रकार परिभाषित किया गया है— व्यक्ति के अंतर्गत आते है, कम्पनी अथवा संगम अथवा व्यक्तियों का निकाय चाहे वह निगमित हो अथवा नहीं।

(ख) कब्जे का हकदार – शब्द 'कब्जे का हकदार' का अर्थ है कि वह व्यक्ति मिल्कीयत (ownership) के आधार पर उस सम्पत्ति पर कब्जे का हकदार हो जिससे वह बे-कब्जा किया गया है।

(ग) अचल सम्पत्ति – धारा 5 तभी लागू होगी जब विवादित सम्पत्ति अचल है। चल सम्पत्ति के संबंध में यह धारा लागू नहीं होगी। अचल सम्पत्ति का तात्पर्य केवल ऐसी सम्पत्ति से है जिनका भौतिक कब्जा दिया जा सकता है। अमूर्त (Incorporeal) अधिकार इस धारा के क्षेत्र से बाहर है।

**कब्जा विषयक कार्य (Possessory actions)** — कब्जा विषयक कार्य वह है जिसमें वादी पूर्वतर कब्जे के बल पर कब्जे की पुनः प्राप्ति चाहता है। ऐसे वाद में उसे अपना हक साबित करने की आवश्यकता नहीं है। उसका पूर्वतर कब्जा स्वयं उसके कब्जे की पुनः प्राप्ति के लिए पर्याप्त है। धारा 6 उपबन्ध करती है कि यदि कोई व्यक्ति स्थावर सम्पत्ति पर से अपनी सम्मति के बिना विधि के सम्यक अनुक्रम से अन्यथा बे-कब्जा किया जाता है तो वह उसके अधिकार के दावा करने वाला कोई व्यक्ति वाद द्वारा उसका कब्जा, किसी ऐसे अन्य अधिकार के जोड़ से जो वाद में बताया जाय, हाते हुए भी पुनः प्राप्त कर सकेगा।

### आवश्यक तत्व (Essential elements)

इस धारा के अंतर्गत वाद लाने के लिए यह आवश्यक है कि – (1) व्यक्ति बे-कब्जा कर दिया गया हो (2) वह बिना अपनी सम्मति के बे-कब्जा किया गया हो (3) बेदखली स्थावर सम्पत्ति से हुई हो (4) बेदखली विधि के सम्यक अनुक्रम से अन्यथा हुई हो तथा (5) वाद बेदखली की तिथि से छः महीने के अंदर दाखिल किया गया हो।

इस धारा के अधीन भौतिक कब्जा आवश्यक है। अमूर्त अधिकारों के संबंध में कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता।

**धारा 6 का विस्तार (Scope of Section 6)** — इस धारा के अंतर्गत अनुतोष के क्षेत्र के संबंध में निम्नलिखित पदा को ध्यान में रखना आवश्यक है

1. बेदखल करने वाले का स्वत्व चाहे जितना भी श्रेष्ठ हो, सम्पत्ति से दोषपूर्ण रीति से बेदखल किया गया व्यक्ति पूर्व कब्जा प्रमाणित करके पुनः कब्जा प्राप्त कर सकता है।
2. वादी के स्वत्व का कोई प्रमाण अपेक्षित नहीं है। न्यायालय पूर्व कब्जे के बल पर वाद का विनिश्चय कर देगा। धारा 6 किसी प्रकार स्वत्व की जाँच की अपेक्षा नहीं करती। इस धारा के अंतर्गत वाद पर विचार करते समय न्यायालय को केवल कब्जे पर विचार करना होगा।
3. इस धारा में आयी हुई कोई वस्तु किसी व्यक्ति को व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अनुसार नियमित वाद द्वारा अपने स्वत्व को स्थापित करने के लिए वाद दायर करने से नहीं रोकेगी।
4. इस धारा के अंतर्गत शासन के विरुद्ध कोई वाद दायर नहीं किया जा सकता।
5. ऐसे वाद में पारित किसी आदेश या डिकी के विरुद्ध कोई अपील या पुनःविलोकन नहीं हो सकता। इस धारा के अंतर्गत पारित आदेश और डिकी अंतिम (final) होते हैं।

**धारा 6 का उद्देश्य (Object of Sec. 6)** — इस धारा का उद्देश्य स्पष्टतः बलात बेदखली को निरूप्त्वात्त्व करना है। यह उद्देश्य इस सिद्धांत पर आधारित है कि विवादग्रस्त अधिकारों का निर्णय विधि के सम्यक अनुक्रम द्वारा होना चाहिए और किसी को कानून अपने हाथ में नहीं लेने देना चाहिए।

### धारा 5 तथा धारा 6 में अंतर

1. धारा 5 के अधीन वादी का बेदखली के लिए विरकाल तक चलने वाला एक नियमित वाद दायर करना होता है, जबकि धारा 6 में संक्षिप्त उपचार की व्यवस्था है।
2. धारा 5 के अधीन मॉग स्वत्व पर आधारित होती है जबकि धारा 6 के अंतर्गत मॉग कब्जे पर आधारित होती है और स्वत्व के प्रमाण की अपेक्षा नहीं की जाती और अधिकार पूर्णस्वामी भी अपना स्वत्व दर्शाने से प्रतिवारित किया जा सकता है।
3. धारा 5 में कालावधि 12 वर्ष होती है जबकि धारा 6 में वह अवधि बेदखली के दिनांक से केवल 6 मास की होती है।

### विनिर्दिष्ट चल सम्पत्ति की पुनः प्राप्ति

धारा 7 उन परिस्थितियों से संव्यवहार करती है जहाँ वादी को चल सम्पत्ति की पुनः प्राप्ति के लिए एक नियमित वाद दायर करना पड़ता है आर जहाँ सम्पत्ति की प्रकृति तथा गुण-सारहीन होता है और वादी को इसके लिए पूर्ण स्वामी होने की आवश्यकता नहीं है। यह धारा उल्लेख करती है कि "कोई व्यक्ति जो विशिष्ट चल सम्पत्ति के कब्जे का अधिकारी है, वह व्यवहार प्रक्रिया संहिता द्वारा स्वीकृत ढंग से कब्जे की पुनः प्राप्ति कर सकता है।"

**व्याख्या 1** — "एक न्यासधारी इस धारा के अंतर्गत सम्पत्ति के कब्जे की प्राप्ति के लिए वाद संस्थित कर सकता है जिसके हितकारी हित का, जिसका कि वह न्यासधारी है अधिकारी होता है।"

**व्याख्या 2** — "सम्पत्ति के वर्तमान कब्जे के लिए विशिष्ट या अस्थायी अधिकार इस धारा के अंतर्गत वाद के समर्थन के लिए पर्याप्त है।"

ऐसे व्यक्ति को जो स्वामी के रूप में काबिज न हो, तत्काल कब्जे के अधिकारी व्यक्ति को परिदान करने का दायित्व — ऐसे दृष्टान्तों में जिनमें सम्पत्ति का विशिष्ट मूल्य अथवा साहचर्य हो और धन के द्वारा पर्याप्त रूप में उसका प्रतिदान न हो सकता हो, धारा 8 उन परिस्थितियों से संव्यवहार करती है, जो वादी को प्रतिवादी से स्वतः ऐसी विशिष्ट चल सम्पत्ति की, जिसका प्रतिवादी स्वामी न हो, पुनः प्राप्ति का अधिकृत बनाती है।

### धारा 7 और 8 में अन्तर :—

1. धारा 7 के अंतर्गत विनिर्दिष्ट चल सम्पत्ति के कब्जे का अस्थायी या विशेष अधिकार रखन वाला व्यक्ति सम्पत्ति के स्वामी के विरुद्ध कार्यवाही का संधारण कर सकता है जबकि धारा 8 के अंतर्गत चल सम्पत्ति के स्वामी के विरुद्ध वाद सक्षम नहीं होता।
2. धारा 7 चल सम्पत्तियों के पुनः प्राप्ति के लिए सामान्य अनुतोष का प्रावधान करती है। धारा 8 उपर वर्णित विशेष मामलों में ही अनुतोष देती है।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

3. धारा 7 के अंतर्गत वाद में निर्मित आज्ञाति आदेश 15 के अंतर्गत होने के कारण चल सम्पत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए, या विकल्प में, प्रतिकर के लिए हो सकती है। धारा 8 के लिए पर्याप्त नहीं होता और मर्मग की जाने वाली अनुतोष प्रतिवादी की सम्पत्ति को बेचने या अन्यथा उसे हानि पहुँचाने या छिपाने से रोकने के लिए या उसकी वापसी के लिए व्यादेश जारी किये जाने के लिए होती है।

**कब्जा प्रदान करने का दायित्व (Liability for possession)** – जो कोई भी व्यक्ति जिसका चल सम्पत्ति की किसी भी ऐसी विशिष्ट वस्तु पर कब्जा अथवा नियंत्रण है जिसका वह स्वामी नहीं है, वह उसके अव्यवहृत कब्जे के हकदार व्यक्ति को निम्नलिखित दशाओं में से किसी में भी उसका विनिर्दिष्ट परिदान करने के लिए विवश किया जा सकेगा –

(क) जबकि दावाकृत वस्तु प्रतिवादी व्यादा वादी के अभिकर्ता अथवा न्यासी के रूप में धारित हो।

(ख) जबकि दावाकृत वस्तु की हानि के लिए धन के रूप में प्रतिकर वादी को यथायोग्य अनुतोष न पहुँचाता हो।

(ग) जबकि उसकी हानि के हुए वास्तविक नुकसान को अभिनिश्चित करना अत्यंत कठिन हो।

(घ) जबकि उस चीज पर कब्जा, जिसके लिए दावा किया जाता है, दावेदार से दोषपूर्णतया अन्तरित किया गया है।

धारा 8 की व्याख्या यह उपबन्ध करती है कि जब तक कि प्रतिकूल सिद्ध न किया जाय तब तक न्यायालय खण्ड (ख) या (ग) के अंतर्गत चल सम्पत्ति की किसी चीज जिसके लिए दावा किया गया है, के संबंध में यह उपधारण करेगा कि उस चीज की हानि के लिए जिसके लिए दावा किया जाता है, धन के रूप में प्रतिकर से वादी को पर्याप्त अनुतोष नहीं मिलेगा, और यह कि हानि से हुए वास्तविक नुकसान को अभिनिश्चित करना अत्यधिक कठिन होगा।

इस धारा के लागू होने के लिए इस धारा में दिये गये चार खण्डों (क) से (घ) सहित निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति जरूरी है –

1. कि दावा की गयी वस्तु प्रतिवादी के कब्जे या नियंत्रण के अधीन है।

2. कि ऐसी वस्तु चल सम्पत्ति है।

3. कि प्रतिवादी ऐसी सम्पत्ति का स्वामी है तथा

4. कि वादी इसके तात्कालिक कब्जे का हकदार है।

### संविदाएँ जिनका विनिर्दिष्ट प्रवर्तन करवाया जा सकता है

विनिर्दिष्ट पालन के उपचार साध्यिक उपचार होने के कारण वह न्यायालय के विवेक पर निर्भर होता है, परन्तु इस विवेक का प्रयोग करने में न्यायालय कुछ सिद्धांतों से शासित होता है। उन परिस्थितियों का जिनमें विनिर्दिष्ट पालन प्रदान किया जा सकता है प्रगणन, विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 10 में किया गया है। विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 10 में उन अवस्थाओं का वर्णन है जिनमें संविदाओं का विनिर्दिष्ट पालन कराया जा सकता है। वे निम्न हैं –

(1) जब कि उस कार्य के न करने से जिसके किये जाने का संविदा हुआ है, वास्तविक हानि को अधिनिश्चित करने का मापदण्ड नहीं है, अर्थात् जबकि क्य तथा बेचे जाने के लिए करार की गयी वस्तु दृष्टाप्य या बहुमूल्य वस्तु है जो कहीं से भी प्राप्त नहीं हो सकती, या

(2) जबकि वह कार्य जिसके किये जाने की संविदा हुई है, ऐसा है कि उसके न किये जाने पर आर्थिक प्रतिकर से पर्याप्त अनुतोष नहीं प्राप्त किया जा सकेगा।

धारा 10 में यह उपबन्ध भी है कि यदि, और जब तक कि, प्रतिकूल सिद्ध न किया जाय तब तक न्यायालय यह उपधारण करेगी कि (अ) अचल सम्पत्ति के हस्तांतरण की संविदा की भग्नता के लिए धन-प्रतिकर व्यादा पर्याप्त अनुतोष नहीं दिया जा सकता, तथा (ब) चल सम्पत्ति के हस्तांतरण की संविदा की भग्नता के लिए ऐसा अनुतोष दिया जा सकता है सिवाय ऐसी दशाओं में 1. जबकि सम्पत्ति वाणिज्य की कोई साधारण वस्तु नहीं है या वादी के लिए विशेष मूल्य या हित वाली है, या ऐसी वस्तु है जो बाजार में सरलता से उपलब्ध नहीं है, तथा 2. जब सम्पत्ति प्रतिवादी व्यादा वादी के अभिकर्ता या न्यासधारी के रूप में संधारित है और न्यायालय व्यादा अपने विवेक का प्रयोग किये जा सकने से पहले यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि संविदा विधि की दृष्टि में मान्य है और विधि के न्यायालयों में प्रमाणित की जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धारा 10 के अनुसार किसी संविदा के विनिर्दिष्ट पालन का प्रवर्तन नीचे दिये तीन दृष्टान्तों में किया जा सकता है, अर्थात् –

1. जब किये जाने के लिए सम्मत कार्य के न किये जाने से पहुँची वास्तविक हानि के सुनिश्चयन के लिए किसी स्तर का अस्तित्व न हो,

2. जब किये जाने के लिए सम्मत कार्य ऐसा हो कि उसको न किये जाने के लिए आर्थिक प्रतिकर प्रर्याप्त अनुतोष न प्रदान करें, अथवा

3. जब यह सम्भाव्य हो कि किये जाने के लिए सम्मत कार्य के न किये जाने के लिए आर्थिक प्रतिकर नहीं प्राप्त किया जा सकता।

**आर्थिक प्रतिकर पर्याप्त अनुतोष नहीं –** जहाँ प्रतिकर वादी को पर्याप्त अनुतोष पहुँचाता है वहाँ संविदा के विनिर्दिष्ट पालन हेतु डिकी पारित नहीं की जा सकती।

इस शीर्षक के अंतर्गत निम्नलिखित रूप से वादों का उद्भव होता है –

#### कम्पनी में हिस्से

**निर्माण की संविदाएँ** – निर्माण अथवा अन्य कार्य की संविदा के लिए निम्नलिखित शर्तें लेखबद्ध की हैं –

i. किये जाने वाले कार्य की संविदाओं के व्यादा निश्चित रूप में स्थापित होना उचित है।

ii. संविदा के पालन में वादी का ऐसा हित होना आवश्यक है जिसकी प्राप्ति आर्थिक प्रतिकर मात्र से न हो सके।

iii. प्रतिवादी ने संविदा के व्यादा उस भूमि पर, जिस पर कार्य करने की संविदा की गयी है कब्जा प्राप्त कर लिया हो।

**सम्पत्ति के अंश –** ऐसी संविदा के भंग का जिसके व्यादा वादी को किसी सम्पत्ति की न्यायालयों के व्यादा पुनः प्राप्ति में सहायता देने के प्रतिकर के रूप में उस सम्पत्ति में एक अंश के प्रदान कर करार किया गया हो, प्रतिकर धन के भुगतान व्यादा नहीं हो सकता।

**आर्थिक प्रतिकर अप्राप्य –** इस शीर्षक के अंतर्गत, प्रतिवादी का दिवालिया हो जाना वादी को विनिर्दिष्ट अनुतोष के प्रदान का सामान्यतया एक आधार होता है। जहाँ यह सम्भावना हो कि यदि आर्थिक प्रतिकर प्रदान कर दिया जाय तो उसकी प्राप्ति नहीं की जा सकती है, वहाँ विनिर्दिष्ट पालन प्रदान किया जा सकता है।

#### संविदा के अंश मात्र का पालन

**सामान्य नियम –** सामान्य नियम यह है कि न्यायालय किसी संविदा के यथावत पालन के लिए विवश नहीं करेगा जब तक कि वह पूरी संविदा का प्रवर्तन न कर सके।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

अधिनियम की धारा 12 (1) इस सामान्य सिद्धांत को लेखबद्ध करती है कि विनिर्दिष्ट पालन का यह आवश्यक तत्व है कि किसी संविदा के अंश मात्र का पालन नहीं किया जाना चाहिए। संविदा किये जाने के समर्थ पक्षों के द्वारा यह अपेक्षित नहीं होता कि, उसका आंशिक पालन किया जाय। इसलिए, साम्य यह अपेक्षा करती है कि यदि विनिर्दिष्ट पालन किया जाना है, तो वह पूर्ण संविदा का होना उचित है।

**अपवाद** – इस सामान्य नियम के कुछ अपवाद हैं जो इस सिद्धांत पर चलते हैं कि “साम्य संविदा के सार पर दृष्टि रखता है और उसकी अक्षरशः पूर्ति की नहीं वरन् उसकी शर्त में सारावान पालन की अपेक्षा करता है।”

1. जब अपालित भाग छोटा है तथा प्रतिकर का अनुमान लगाया जा सकता है। जहाँ किसी संविदा का कोई पक्ष उसके अपने पूरे भाग का पालन न कर सके, परन्तु वह भाग, जिसका असम्पादित छूट जाना आवश्यक है, मूल्य में पूर्ण का केवल एक अल्प अनुपात, संगठित करता हो और उसका आर्थिक प्रतिकर हो सकता हो वहाँ न्यायालय, पक्षों में से किसी के द्वारा वाद दायर किय जाने पर संविदा के, उस भाग के, जिसका पालन किया जा सकता है, विनिर्दिष्ट पालन का निर्देश कर सकता है और असम्पादित छूटे भाग के संबंध में आर्थिक प्रतिकर प्रदान कर सकता है। (धारा 12 (2))
2. असम्पादित अंश बड़ा हो, यद्यपि उसका आर्थिक प्रतिकर हो सकता हो अथवा न हो सकता हो—जहाँ कि संविदा का कोई पक्षकार उस संविदा के अपने पूरे भाग का पालन करने में असमर्थ है, और वह भाग जिसे अपालित रहने देना होगा या तो (क) सम्पूर्ण का बड़ा भाग है, यद्यपि इसके लिए धन के रूप में प्रतिकर ग्राह्य है या (ख) उसका धन के रूप में प्रतिकर नहीं दिया जा सकता है, वहाँ वह पक्षकार विनिर्दिष्ट पालन की आज्ञाप्ति अभिप्राप्त करने के लिए हकदार नहीं है, कि किन्तु दूसरे पक्षकार के वाद पर न्यायालय चूक करने वाले पक्षकार को संविदा के अपने भाग के उत्तरे भाग का जितने का पालन कि वह कर सकता है, विनिर्दिष्ट पालन करने का निर्देश दे सकेगा यदि अन्य पक्षकार ने (1) खण्ड (ए) के अंतर्गत आने वाली दशा में सम्पूर्ण संविदा के पालन के लिए करार की गयी रकम में से उस भाग का प्रतिफल जिसे अपालित रहने देना होगा, काटकर दे दिया है, या देता है और खण्ड (बी) के अंतर्गत आने वाली दशा में, संपूर्ण संविदा के पालन के लिए करार की गयी रकम बिना किसी कमी के दे दिया है, या देता है और (2)दोनों में से किसी भी दशा में वह संविदा के शेष भाग के पालन के समस्त दावों को और या तो रह गयी कमी के लिए अथवा प्रतिवादी की चूक द्वारा उसके द्वारा सही गयी हानि या नुकसान के लिए प्रतिकर के सब दावों को छोड़ दे। (धारा 12 (3))
3. “जब संविदा का एक भाग, जिसका स्वतः विनिर्दिष्ट पालन किया जा सकता हो और किया जाना उचित हो, उसी संविदा के दूसरे भाग से, जिसका विनिर्दिष्ट पालन न किया जा सकता हो और किया जाना उचित न हो, पृथक और स्वतंत्र स्तर पर स्थित हो, तो न्यायालय पूर्वांकित भाग के विनिर्दिष्ट पालन का निर्देश कर सकता है। (धारा 12 (4))

अपूर्ण स्वत्व वाले विकेता अथवा पट्टाकर्ता के विरुद्ध केता अथवा पट्टेदार के अधिकार (धारा 13)

### संविदाएँ जिनका विनिर्दिष्ट प्रवर्तन नहीं किया जा सकता

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 14 के अनुसार निम्नलिखित संविदाओं का विनिर्दिष्ट प्रवर्तन नहीं किया जा सकता—

- I. जब धन के रूप में प्रतिकर पर्याप्त है—ऐसी संविदा जिसके अपालन के लिए आर्थिक प्रतिकर पर्याप्त अनुतोष हो तो उस संविदा की विनिर्दिष्टतः प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता (धारा 14(i)(क))
- II. संविदाएँ जो व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित हो — निम्नलिखित संविदाएँ विनिर्दिष्टतः प्रवर्तित करायी नहीं जा सकती —  
(क) ऐसी संविदा जो इतने सूक्ष्म तथा बहुसंख्यक विवरण देती हो,  
(ख) ऐसी संविदा जो व्यक्तिगत योग्यता तथा पक्षकारों की स्वेच्छा पर आधारित हो  
(ग) जहाँ संविदा की प्रकृति ऐसी हो कि न्यायालय उसके विनिर्दिष्ट पालन का प्रवर्तन न कर सके। (धारा 14(1)(ख))

### उदाहरण

- (क) न्यायालय किसी मकान अथवा भवन के निर्माण अथवा मरम्मत की संविदा के यथावत पालन का आदेश नहीं दे सकता, क्योंकि उसमें सूक्ष्म तथा बहुसंख्यक विवरण अन्तर्गत होते हैं जिनके लिए दीर्घकाल तक देखभाल तथा पर्यवेक्षण अपेक्षित है।  
(ख) चिकित्सा, पुस्तक लेखन अथवा किसी रंगशाला में गीत गाने की संविदा विनिर्दिष्टतः प्रवर्तित नहीं करायी जा सकती।
- III. संविदा जो अपनी प्रकृति से ही पर्यवर्त्य होती है — संविदाएँ जो अपनी प्रकृति से ही समाप्त होती हैं, विनिर्दिष्टतः प्रवर्तित नहीं करायी जा सकती। खण्डनीय संविदाएँ भी विनिर्दिष्टतः प्रवर्तित नहीं करायी जा सकती, जैसे भागीदारी की संविदा जिसकी कोई अवधि निश्चित नहीं है, ऐसी भागीदारी किसी भी क्षण समाप्त की जा सकती और उसका विनिर्दिष्ट पालन व्यर्थ होगा।
- IV. संविदाएँ जिनमें न्यायालय का सतत पर्यवेक्षण अन्तर्गत हो — वह संविदा जिसके पालन में ऐसा सतत कर्तव्य का पालन अन्तर्वलित हो जिसका न्यायालय पर्यवेक्षण न कर सकते हो ऐसी संविदा का विनिर्दिष्ट पालन नहीं कराया जा सकता। (धारा 14(1)(ग))
- V. मध्यस्थ के लिए संविदा — जहाँ एक करार मध्यस्थ के निर्देशन के लिए किया जा चुका है तथा उसे एक मध्यस्थ निर्णय में स्थिर किया जा चुका है तो ऐसे निर्णय के खण्डन के लिए कपट तथा दुरभासंधि के आधार पर वाद धारा 14 (2) के विरुद्ध नहीं होगा।
- VI. संविदाएँ जो वैध नहीं हैं — धारा 11(2) ऐसी संविदाओं से संव्यवहार करता है जो विधि में वैध नहीं है तथा विनिर्दिष्ट प्रवर्तित नहीं की जा सकती है जैसे न्यासी द्वारा अपनी शक्तियों के बाहर या न्यास के भंग में को गयी संविदा का विनिर्दिष्टतः प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता।
- VII. अनिश्चित शर्तों की संविदाएँ — न्यायालय किसी ऐसी संविदा का प्रवर्तन नहीं कर सकता, जिसकी शर्त अनिश्चित हों। रियायती दर से विक्षय करने की संविदा अनिश्चित होती है और इस कारण शून्य है।
- VIII. संविदा जो शून्य हा जाये — संविदा किये जाने के पश्चात विधान में परिवर्तन के कारण यदि संविदा शून्य हो जाये तो उसका विनिर्दिष्ट पालन नहीं कराया जा सकता।
- IX. निर्माण अथवा जीर्णद्वारा की संविदाएँ — ऐसी संविदा का जिसमें संवेदित कार्य का निष्पादन आवश्यक रूप से अधिक समय ले और कार्य ऐसा हो जिसके पर्यवेक्षण का साधन न्याय के पास न हो, विनिर्दिष्ट पालन की डिकी करना सुविधाजनक मार्ग नहीं

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

है। अतः इंग्लैण्ड में यह नियम रहा कि न्यायालय सामान्यतया निर्माण अथवा अभियन्त्र के कार्य की संविदा के सबंध में यह उपचार नहीं प्रदान करेगा।

- X. संविदाएँ जिनमें पारस्परिकता का अभाव हो – साधारण नियम यह है कि ऐसी संविदा का विनिर्दिष्ट पालन नहीं प्रदान किया जा सकता जिसका प्रवर्तन पक्षों में से केवल एक के विकल्प पर किया जाता हो।

### कौन विनिर्दिष्ट पालन अभिप्राप्त कर सकते हैं?

इस अध्याय में अन्यथा उपबन्धित के सिवाय, किसी संविदा का विनिर्दिष्ट पालन –

1. उसमें का कोई पक्षकार करा सकता है।
2. उसमें के किसी पक्षकार का हित-प्रतिनिधि या मालिक करा सकता है,
3. जहाँ कि ऐसे पक्षकार का विज्ञाता, कौशल, शौध-क्षमता (solvency) या कोई वैयक्तिक गुण संविदा का सारवान अंग है, या जहाँ कि संविदा यह उपबन्ध करती है कि उसका हित समन्वेशित (Assign) नहीं किया जा सकता वहाँ उसका हित-प्रतिनिधि या मालिक संविदा का विनिर्दिष्ट पालन कराने के लिए हकदार नहीं होगा, जब कि उससे अपने भाग का विनिर्दिष्ट पालन पहले ही न करा दिया हो, या उसके हित-प्रतिनिधि या उसके मालिक व्यारा उसके पालन को अन्य पक्षकार व्यारा स्वीकृत न कर लिया गया हो।
4. जहाँ कि किसी जीवन-पर्यन्त-आभोगी व्यारा कोई संविदा शक्ति के यथावत प्रयोग में की गयी है वहाँ शेषभोगी (remainderman) व्यारा कराया जा सकता है।
5. जहाँ कि करार कब्जा रखने वाले उत्तरभोगी के हक-पूर्वाधिकारी (predecessor in-interest) के साथ की गयी प्रसंविदा है और उत्तरभोगी ऐसे प्रसंविदा का फायदा उठाने के लिए हकदार है, वहाँ ऐसा उत्तरभोगी करा सकता है।
6. जहाँ कि करार ऐसी प्रसंविदा है और शेष उत्तरभोगी उसका फायदा उठाने के लिए हकदार है और उसके भंग होने से वास्तविक हानि उठायेगा, वहाँ ऐसा उत्तरभोगी करा सकता है।
7. जबकि कम्पनी ने संविदा की ओर तत्पश्चात वह किसी दूसरी कम्पनी में सम्मिलित हो गयी है जब जो नयी कम्पनी ऐसे समामेलन से उद्भुत हुई है वह कम्पनी करा सकती है।
8. जबकि किसी कम्पनी के प्रवर्तकों ने उसके निगमन के पहले कम्पनी के प्रयोजनों के लिए संविदा की है और ऐसी संविदा निगमन के निबन्धन व्यारा अधिदिष्ट है, तब कम्पनी बशर्ते कि उसने संविदा स्वीकार कर लिया है और इस स्वीकृति की सूचना संविदा के अन्य पक्षकार को दे दिया है, करा सकती है। (धारा 15)

**व्यक्ति जिनके पक्ष में विनिर्दिष्ट पालन का प्रवर्तन नहीं किया जा सकता – धारा 16 के अनुसार –**

संविदा का विनिर्दिष्ट पालन किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में नहीं कराया जा सकता –

1. जो उसके भंग के लिए प्रतिकर के वसूल करने का अधिकारी न हो।
2. (क) जो संविदा के किसी आवश्यक निबन्धन का जिसका उसकी ओर से पालन अब तक न किया गा हो, पालन करने में असमर्थ हो गया हो।  
(ख) जो संविदा के किसी आवश्यक निबन्धन का अतिलंघन करता है, जिसका पालन उसकी ओर से नहीं किया जाता।  
(ग) जो संविदा के सबंध में कपटपूर्वक कार्य करता है अथवा जान-बूझकर उस सबंध के जिसका संविदा व्यारा स्थापित किया जाना आशयित है, उसे समाप्त करने के लिए कार्य करता है।
3. जो यह समिक्षकथन और प्रमाणित नहीं करता कि संविदा के ऐसे निबन्धनों के अतिरिक्त, जिनका पालन प्रतिवादी ने रोक दिया है या जिनका उसने अधित्याग कर दिया है, आवश्यक निबन्धनों का उसने पालन कर दिया है या पालन के लिए सदैव उद्यत और सहमत रहा है।

**स्पष्टीकरण –** जहाँ किसी संविदा में धन का भुगतान अन्तर्गत हो, वहाँ वादी के लिए सिवाय जबकि न्यायालय ऐसा निर्देश करे, यह आवश्यक नहीं होता है कि किसी धनराशि को प्रतिवादी के समक्ष प्रस्तुत करें या न्यायालय में जमा करें। वादी के लिए यह आवश्यक है कि वह संविदा के, उसके वास्तविक अर्थ के अनुसार, पालन का सम्भिकथन करे या पालन के लिए उद्यत तथा सहमत होना प्रकट करें।

4. ऐसे व्यक्ति व्यारा सम्पत्ति के विकल्प की संविदा जो उसे बेचने के लिए हकदार न हो। (धारा 17 (1)(क))
5. जब विकेता, केता को हक प्रदान नहीं कर सकता— जिसने यद्यपि इस विश्वास के साथ संविदा की थी कि सम्पत्ति पर उसका अच्छा हक है, तथापि जो विकल्प के या पटटे के पूरा करने के लिए पक्षकारों या न्यायालय व्यारा विस्थापित कर दिया हो, अभ्यर्थना करने वाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध। (धारा 17 (1)(ख))

### ऐसे व्यक्ति जिनके विरुद्ध संविदा का विनिर्दिष्ट प्रवर्तन किया जा सकता है

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 19 के अनुसार संविदा के विनिर्दिष्ट पालन का प्रवर्तन निम्नलिखित व्यक्तियों के विरुद्ध किया जा सकता है—

1. संविदा के किसी पक्षकार – विनिर्दिष्ट पालन के बाद में संविदा के पक्षकार पर्याप्त व आवश्यक पक्षकार है। एक अजनबी संविदा का उचित व आवश्यक पक्षकार नहीं है। (धारा 19 (1)(क))
2. संविदा के बाद उद्भूत स्वत्व के आधार पर उसके अधीन अभ्यर्थना करने वाले किसी व्यक्ति के, सिवा प्रतिकर के बदले में ऐसे हस्तांतरिती के, जिसे मूल संविदा की सूचना न रही हो। (धारा 19 (1)(ख))
3. ऐसे स्वत्व के अंतर्गत, जो यद्यपि संविदा के पूर्व का हो और वादी को ज्ञात रहा है, तथा प्रतिवादी व्यारा विस्थापित कर दिया हो, अभ्यर्थना करने वाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध। (धारा 19 (1)(ग))
4. जब किसी लोक कम्पनी ने कोई संविदा की हो और तदुपरान्त उसका समामेलन किसी अन्य लोक कम्पनी से हो जाय तो समामेलन के उपरांत उद्भूत नये कम्पनी के। (धारा 19 (1)(घ))

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

5. जब किसी लोक कम्पनी के प्रवर्तकों ने उसके निगमन से पहले कम्पनी के प्रयोजनों के लिए कोई संविदा की हो और ऐसी संविदा निगमन के निबन्धनों द्वारा अध्याभूत हो तो कम्पनी के, बशर्ते कि कम्पनी ने संविदा स्वीकार कर ली हो और ऐसी स्वीकृति की संसूचना संविदा के दूसरे पक्ष को दे दी हो। (धारा 19 (1)(ज))

**विनिर्दिष्ट पालन की डिकी करने के बारे में विवेकाधिकार** – विनिर्दिष्ट पालन की डिकी करने की अधिकारिता विवैकिक है तथा न्यायालय ऐसा अनुतोष प्रदान करने के लिए आबद्ध नहीं है, केवल इस कारण से कि ऐसा करना विधिपूर्ण है किन्तु न्यायालय का यह विवेकाधिकार मनमाना नहीं है, वरन् स्वस्थ्य और युक्तियुक्त, न्यायिक सिद्धांतों द्वारा मार्ग-दर्शित तथा अपील न्यायालय द्वारा शुद्धिशक्य है।

निम्नलिखित दशाएँ ऐसी हैं जिसमें न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन की डिकी अनुमत न करने के अपने विवेकाधिकार का उचिततया प्रयोग कर सकेगा—  
(क) जहाँ की संविदा के निबन्धन या संविदा करते समय पक्षकारों का आचरण या अन्य परिस्थितियाँ, जिनके अधीन संविदा की गयी थी, ऐसी हों कि संविदा यद्यपि शून्यकरणीय नहीं है, तथापि वादी को प्रतिवादी के ऊपर नावाजिब फायदा देती है, अथवा

(ख) जहाँ कि संविदा का विनिर्दिष्ट पालन प्रतिवादी को कुछ ऐसे कष्ट में डाल देगा जिसे वह पहले से प्रकल्पना नहीं कर सका था और उसका अपालन वादी को वैसे किसी कष्ट में नहीं डालेगा।

(ग) जहाँ कि प्रतिवादी ने संविदा ऐसी परिस्थितियों के अधीन की हो जिससे यद्यपि संविदा शून्यकरणीय तो नहीं हो जाती। किन्तु उनके विनिर्दिष्ट-पालन का प्रवर्तन असाम्यिक हो जाता है।

**स्पष्टीकरण 1** — प्रतिफल की अपर्याप्तता मात्र या यह तथ्य मात्र कि संविदा प्रतिवादी के लिए दुर्भर या अपनी प्रकृति से ही अदूरदर्शी है, खण्ड (क) के अर्थ के भीतर अऋजु फायदा अथवा खण्ड (ख) के अर्थ के भीतर कष्ट न समझा जायगा।

**स्पष्टीकरण 2** — यह प्रश्न कि संविदा का पालन खण्ड (ख) के अर्थ के भीतर प्रतिवादी को कष्ट में डाल देगा या नहीं संविदा के समय विद्यमान परिस्थितियों के प्रति निर्देशन से अवधारित किया जाएगा सिवाय उन दशाओं के जिनमें कि कष्ट संविदा के पश्चात वादी द्वारा किए गये किसी कार्य के परिणामस्वरूप हुआ है।

3. किसी ऐसी दशा में जहाँ कि वादी ने विनिर्दिष्ट: पालनीय संविदा के परिणामस्वरूप सारवान कार्य किए हैं या हानियाँ उठायी हैं, वहाँ न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन की डिकी करने के विवेकाधिकार या उचिततया प्रयोग कर सकेगा।

4. न्यायालय किसी पक्षकार को संविदा का विनिर्दिष्ट पालन करने से इन्कार केवल इस आधार पर नहीं करेगा कि संविदा दूसरे पक्षकार की प्रेरणा पर प्रवर्तनीय नहीं है।

**कठिपय मामलों में क्षतिपूर्ति दिलाने का अधिकार** — विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत कुछ मामलों में संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के बाद में न्यायालय क्षतिपूर्ति का आदेश प्रदान कर सकता है। यह धारा इस प्रकार से है—

1. किसी संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के बाद में वादी, ऐसे पालन के या अतिरिक्त या स्थान पर उसके भंग के लिए प्रतिकर का भी दावा कर सकेगा (धारा 21 (1))

विनिर्दिष्ट पालन के बाद में वादी क्षतिपूर्ति के लिए विशेष रूप से प्रार्थना करने के लिए बाध्य नहीं है। वह क्षतिपूर्ति के लिए आवेदन करने के लिए स्वतंत्र है तथा न्यायालय क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए विवेक रखता है, यदि उसका विचार है कि क्षतिपूर्ति पर्याप्त उपचार है।

2. यदि किसी ऐसे बाद में न्यायालय यह विनिश्चय करे कि विनिर्दिष्ट पालन तो अनुदत्त नहीं किया जाना चाहिए किन्तु पक्षकारों के बीच ऐसी संविदा है जो प्रतिवादी द्वारा भंग की गयी है और वादी उस भंग के लिए प्रतिकर पाने का हकदार है, तो वह उसे तदनुसार वैसा प्रतिकर दिलाएगा। (धारा 21 (2))

न्यायालय वादी को उचित क्षतिपूर्ति दिलाने की शक्ति का प्रयोग कर सकता है यदि वह संतुष्ट हो जाता है कि—

(क) विनिर्दिष्ट पालन प्रदान नहीं किया जाना चाहिए था,

(ख) पक्षकारों के बीच ऐसी सारभूत संविदा थी जो प्रतिवादी द्वारा भंग की गयी थी।

(ग) वादी उस भंग के लिए प्रतिकर पाने का अधिकारी है।

3. यदि किसी ऐसे बाद में न्यायालय यह विनिश्चय करे कि विनिर्दिष्ट पालन तो अनुदत्त किया जाना चाहिए किन्तु उस मामले में न्याय की तुष्टि के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है और संविदा के भंग के लिए वादी को कुछ प्रतिकर भी दिया जाना चाहिए तो वह तदनुसार उनको ऐसा प्रतिकर दिलाएगा। (धारा 21 (3))

4. इस धारा के अधीन अधिनिर्णीत किसी प्रतिकर की रकम के अवधारण में न्यायालय भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 73 में विनिर्दिष्ट सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित होगा। (धारा 21 (4))

5. इस धारा के अधीन कोई प्रतिकर नहीं दिलाया जाएगा जब तक कि वादी ने अपने वादपत्र में ऐसे प्रतिकर का दावा न किया हो परन्तु जहाँ वादपत्र में वादी ने किसी ऐसे प्रतिकर का दावा न किया हो वहाँ न्यायालय कार्यवाही के किसी भी प्रकम में वादी को वादपत्र में ऐसे प्रतिकर का दावा अंतर्गत करने के लिए संशोधित करने की अनुज्ञा ऐसे निबन्धनों पर देगा जैसे न्यायसंगत हो। (धारा 21 (5))

### परिशोधन (परिशद्धि) (Rectification)

परिशुद्धि से तात्पर्य पक्षों के वास्तविक आशय को प्रभाव में लाने के लिए किसी प्रलेख में किसी भूल का सुधार है। जहाँ कि संविदा किसी पूर्व करार के अनुसरण में लिपिबद्ध की गयी हो और संलेख कपट अथवा पारस्परिक भूल के कारण पक्षों के वास्तविक आशय को व्यंजित न करता हो, वहाँ न्यायालय उनके यथार्थ आशय के अनुसार लिखित प्रलेख का परिशोधन कर देगा। ऐसे दृष्टांत में मूल धारणा यह होती है कि वास्तव में पक्षों के बीच एक पूर्ण तथा पूरी तरह से अवर्ज्य संविदा का अस्तित्व है, परन्तु उसके समावेश के लिए उदिष्ट संलेख, कपट अथवा पारस्परिक भूल के कारण, अशुद्ध अथवा अपूर्ण है और चाहा गया अनुतोष संलेख का परिशोधन है, जिससे कि वह वास्तविक आशय के अनुकूल हो जाय। ऐसे दृष्टांत में प्रलेख का उसी रूप में प्रवर्तन कम से कम एक पक्ष के लिए अवश्य क्षतिकर होगा, उसका पूर्णतः विखण्डन दोनों के लिए अवश्य ही हानिकर होगा, परन्तु उसका परिशोधन करके उसका प्रवर्तन दोनों में से किसी के लिए क्षतिकर नहीं, वरन् दोनों के ही आशय को कार्यान्वित करेगा। परिशोधन के दृष्टांत में न्यायालय दूसरे

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

पक्ष से अभिकथित परिवर्तन को स्वीकार लेने को नहीं कहता, वरन् ऐसी किसी स्वीकृति का प्रस्ताव किये बिना ही प्रलेख को पक्षों के आशय के अनुरूप बना देता है।

**आवश्यक शर्तें (Essential requisites) –** परिशोधन प्राप्त करने के लिए आवश्यक शर्तें ये हैं –

1. उस लिखित प्रलेख के पहले, जिसका परिशोधन चाहा जाता है किसी करार का पूर्ण हो गया होना आवश्यक है। यहाँ दो प्रमिन्न परिस्थितियों का होना आवश्यक है –
  - (क) एक मौखिक अथवा लिखित करार, जो पक्षों के अन्तिम आशय को सुस्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करता हो, और
  - (ख) एक प्रलेख जिसमें उस आशय का समाविष्ट होना आशयित हो।
2. यह आवश्यक है कि दोनों पक्षों का यह आशय रहा हो और अब भी हो कि पूर्व संविदा के निबन्धन ठीक-ठीक लेखबद्ध कर दिये जायें।
3. दोनों पक्षों की भूल अथवा कपट का स्पष्ट साक्ष्य।

**सिद्धांत –** प्रलेखों का सुधार करने में न्यायालय जिस सिद्धांत पर कार्य करता है वह यह है कि विद्यपक्ष उसी स्थिति में रख दिये जाएँ, जिसमें मैं होते, यदि भूल न हुई होती।

**प्रलेखों का परिशोधन कब किया जा सकेगा? –** विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 26 के अनुसार –

1. जब कपट अथवा पक्षों की पारस्परिक भूल के कारण कोई लिखित संविदा अथवा अन्य प्रलेख उनके वास्तविक आशय को यथार्थतः प्रकट न करता है, तब (यदि लिखित किसी कम्पनी का पार्षद अन्तर्नियम, जिसे कम्पनी अधिनियम, 1956 लागू होता है, नहीं है) उस प्रलेख का परिशोधन किया जा सकेगा। (धारा 26 (1))

**परिशोधन के लिए कौन आवेदन कर सकेगा?**

- (क) विपक्ष में से कोई भी अथवा उसके हित का प्रतिनिधि प्रलेख की परिशुद्धि के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। (धारा 26 (1)(क))
- (ख) वादी किसी ऐसे वाद में जिसमें प्रलेख के अंतर्गत उदभव होने वाला कोई अधिकारी विवादग्रस्त हो अपने अभिवचन में यह अभ्यर्थना कर सकता है कि प्रलेख की परिशुद्धि कर दी जाय अथवा (धारा 26 (1) (ख))
- (ग) प्रतिवादी खण्ड (ख) में निर्देशित किसी वाद में किसी अन्य प्रतिवादी के अतिरिक्त जो उसको प्राप्त हो प्रलेख की परिशुद्धि के लिए अनुरोध कर सकता है। (धारा 26 (1) (ग))

**परिशोधन के लिए प्रक्रिया (Procedure for rectification) –** यदि किसी वाद में जिसमें उपधारा (1) के अंतर्गत किसी संविदा अथवा अन्य प्रलेख की परिशुद्धि चाहीं जाती हो और न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रलेख कपट अथवा भूल के कारण पक्षों के वास्तविक आशय को व्यक्त नहीं करता, तो न्यायालय अपने विवेकानुसार प्रलेख के इस प्रकार परिशुद्धि का निर्देश कर सकता है कि किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा सद्भावनापूर्वक और प्रतिकर के बदले में अर्जित अधिकारों पर बिना प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न किये जहाँ तक संभव हो इस तरह परिशुद्धि की जाय कि वह आशय अभिव्यक्त हो जाय। (धारा 26 (2))

### संविदा का विखण्डन (Rescission of Contracts)

संविदा का विखण्डन विशिष्ट पालन के विपरीत एक साम्यक उपचार है जो पक्षकारों को एक संविदा के आभार से मुक्ति प्रदान करने का अवसर देता है, जो अपवर्ती (Inoperative) है अथवा इसके पक्षकारों में से किसी पक्ष की इच्छा पर वह ऐसा हो जाता है। इसका आशय है कि किसी संविदा को समाप्त करना तथा आरम्भ से ही इसे अकृत तथा शून्य बना देना। यह प्रभावहीन संविदाओं में लागू होने योग्य नहीं है वरन् उन संविदाओं में जो प्रभावहीन होने योग्य हैं।

**विखण्डन के लिए कौन वाद ला सकेगा –** लिखित संविदा में हितबद्ध कोई व्यक्ति उसे विखण्डित कराने के लिए वाद ला सकेगा। अतः कोई व्यक्ति जिसका उस संविदा से हित प्रभावित होता है, संविदा विखण्डन के लिए वाद ला सकेगा।

**कब विखण्डन विनिर्णीत हो सकता है –** संविदा निन्नलिखित परिस्थितियों में विखण्डित की जा सकती है –

1. संविदा में विखण्डन खण्ड – जब संविदा में विखण्डन खण्ड स्पष्टतया अन्तर्विष्ट हो तो संविदा उस खण्ड के अनुसरण में विखण्डित की जा सकती।
2. शून्यकरणीय अथवा समाप्त संविदा – जहाँ संविदा वादी द्वारा शून्यकरणीय या समाप्त हो वहाँ न्यायालय इसे विखण्डित विनिर्णीय कर सकता। (धारा 21 (1) (क))  
संविदा शून्यकरणीय है जब वह दबाव कपट, अनुचित प्रभाव, मिथ्या व्यपदेशन अथवा भूल द्वारा दूषित हो।  
कपट – जब संविदा कपट द्वारा दूषित हो तो वह व्यक्ति जो कपट द्वारा संविदा करने के लिए उकसाया गया है, वह विखण्डन के लिए वाद ला सकता है तथा क्षतिपूर्ति के लिए भी वाद ला सकता है।  
मिथ्या व्यपदेशन – जब संविदा मिथ्या व्यपदेशन द्वारा दूषित हो तो व्यक्ति पक्षकार संविदा विखण्डन के लिए तथा क्षतिपूर्ति के लिए वाद ला सकता है।
3. अवैध संविदा – जहाँ संविदा ऐसे हेतुकों से विधि विरुद्ध है जो उसके देखने से ही प्रकट नहीं है और प्रतिवादी का दोष वादी से अधिक है तो संविदा विखण्डित की जा सकती। (धारा 21 (1) (क))
4. केता या पट्टेदार द्वारा व्यतिक्रम – यदि स्थावर सम्पत्ति के विक्रय या पट्टे के लिए की गयी संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए लाये गये वाद में विनिर्दिष्ट-पालन की डिकी अनुदत्त कर दी गयी है, और केता या पट्टेदार न्यायालय द्वारा स्वीकृति अवधि या उस अतिरिक्त अवधि के अंदर, जो न्यायालय स्वीकर करे, क्य धन या अन्य राशि, जिसे अदा करने के लिए न्यायालय ने आदेश दिया है, नहीं अदा करता, तो विकेता या पट्टादाता, उसी वाद में जिसमें डिकी अनुदत्त की गयी है, संविदा के विखण्डन के लिए दरखास्त दे सकता है और न्यायालय

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

- ऐसी दरखास्त पर आदेश व्यारा संविदा को पूर्णतः या जहाँ तक चूक करने वाले पक्षकार का सबंध है और न्यायतः वांछनीय है, विखण्डित कर कर सकेगा।
5. **विकल्पित अनुतोष** – लेखनबद्ध संविदा का विनिर्दिष्ट पालन कराने के लिए वाद संस्थित करने वाला वादी यह प्रार्थना विकल्पतः कर सकेगा और संविदा का विनिर्दिष्ट पालन नहीं कराया जा सकता तो उसे विखण्डित कर दिया जाये और प्रतिसंहरण के लिए परिदित्त कर दिया जाय, और यदि न्यायालय उसको यथोलिखितरूपेण अनुपालित कराने से इनकार करें तो वह उसका विखण्डित किया जाना और परिदित्त किया जाना निर्दिष्ट कर सकेगा। (धारा 28)

**विखण्डन का अनुतोष कब नहीं** – विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 27 (2) उन परिस्थितियों का उल्लेख करती है जिनमें न्यायालय संविदा का विखण्डन नकार कर सकता है –

- (क) जहाँ वादी ने सुव्यक्त अथवा उपलक्षित रूप में संविदा का अनुसमर्थन कर दिया हो, या
- (ख) जहाँ संविदा किये जाने के बाद परिवर्तियों में हुए परिवर्तन के कारण (जो स्वतः प्रतिवादी के किसी कार्य के कारण न हुआ हो) विवपक्ष सारतः उसी स्थिति में पुनः नहीं रखे जा सकते, जिसमें वे संविदा किये जाने के समय थे या
- (ग) जहाँ संविदा के अस्तित्वकाल में तीसरे पक्ष ने सदभावनापूर्वक, बिना सूचना के प्रतिकर के बदले में, अधिकार अर्जित कर लिये हों या
- (घ) जहाँ संविदा के केवल किसी भाग का विखण्डन चाहा जाता हो और ऐसा भाग शेष संविदा से पृथक् न किया जा सकता हो।

### प्रलेखों का प्रतिसंहरण (Cancellation of instruments)

यदि कोई प्रलेख जिस उद्देश्य के लिए लिखा गया था पूर्ण हो चुका है अथवा कोई ऐसा व्यक्ति जिसके विरुद्ध कोई लिखित प्रलेख शून्य अथवा शून्यकरणीय हो और जिसे यह युक्तिसंगत आशंका हो, कि ऐसा प्रलेख यदि उसे प्रविशिष्ट रहने दिया गया उसे गम्भीर क्षति पहुँचा सकता है, उसके शून्य अथवा शून्यकरणीय न्यायनिर्णीत किये जाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है और न्यायालय अपने विवेकानुसार उसे रद्द किये जाने का आदेश दे सकता है।

**प्रलेखों का रद्दकरण का आदेश कब दिया जा सकता है?** – कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध कोई प्रलेख शून्य या शून्यकरणीय है और जिसे युक्तियुक्त आशंका है कि यदि ऐसी लिखत बची रहने दी गयी तो से भारी क्षति पहुँच सकती है उसे शून्य या शून्यकरणीय कराने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है और न्यायालय अपने विवेकानुसार उसे रद्द किये जाने का आदेश दे सकता है। (धारा 31(1))

यदि प्रलेख का पंजीयन भारतीय पंजीयन अधिनियम, 1908 के अधीन किया जा चुका है तो न्यायालय अपनी आज्ञाप्ति की एक प्रति ऐसे पदाधिकारी को भेजेगा जिसके कार्यालय में प्रलेख का उस प्रकार पंजीयन हुआ है और ऐसा पदाधिकारी अपनी पुस्तकों में अन्तर्विष्ट प्रलेखक की प्रति पर उसके रद्दकरण का तथ्य टीप लेगा। (धारा 31(2))

### घोषणात्मक आज्ञाप्ति (Declaratory decree)

घोषणात्मक आज्ञाप्ति वह आज्ञाप्ति है जिसके व्यारा किसी शंकास्पद अधिकार की घोषणा करके उसे स्पष्ट किया जाता है। ऐसी आज्ञाप्ति कोई नया अधिकार नहीं उत्पन्न करती, अपितु केवल उस अधिकारी की घोषणा मात्र करती है जो पहले से ही है। ऐसे वादों में किसी अधिकार की घोषणा अपेक्षित होती है और प्रतिवादी को कुछ देना या करना नहीं पड़ता। उदाहरण – वैध रूप से कुछ भूमि के के कब्जे में हैं। गांव के निवासी इस बात का दावा करते हैं कि उन्हें उसकी भूमि पर रास्ते का अधिकार है। क इस बात की घोषणा कराने के लिए वाद कर सकता है कि उन्हें उसकी भूमि पर रास्ते का अधिकार नहीं है।

घोषणात्मक आज्ञाप्ति अनुतोष की एक ऐसी रीति होती है जिसमें विनिर्दिष्ट पालन अथवा प्रतिकर प्रदान नहीं होता। वह पक्ष के अधिकारा की केवल एक घोषणा होती है जिसमें कोई परिणामी अनुतोष नहीं होता जिसका आज्ञाप्ति के निष्पादन व्यारा प्रवर्तन कराया जा सके।

**धारा 34** यह लेखबद्ध करती है कि कोई भी व्यक्ति, जो किसी सम्पत्ति के संबंध में किसी वैधिक स्थिति अथवा किसी अधिकार का अधिकृत हो, किसी भी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध, जो भी उसकी ऐसी स्थिति अथवा अधिकार के स्वत्व से इन्कार करता हो या इन्कार करने में अभिरुचि रखता हो, वाद दायर कर सकता है और न्यायालय अपने विवेकानुसार उसमें यह घोषणा कर सकता है कि वह इस प्रकार अधिकृत है और यह आवश्यक नहीं है कि वादी ऐसे वाद में किसी अतिरिक्त अनुतोष के लिए प्रार्थना करे।

**कौन वाद दायर कर सकता है** – धारा 34 के अनुसार

- (क) कोई व्यक्ति विधिक स्थिति का हकदार हो, अथवा
- (ख) किसी सम्पत्ति में किसी अधिकार का अधिकारी हो, घोषणात्मक आज्ञाप्ति प्राप्त करने के लिए वाद दायर कर सकता है।

किसके विरुद्ध वाद प्रस्तुत किया जा सकता है – वाद किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध प्रस्तुत किया जा सकता है जो ऐसी स्थिति या अधिकार के स्वत्व को— (1) अर्वीकार करता हो, या (2) अस्वीकार करने में अभिरुचि रखता हो।

**परिणामिक अनुतोष** (Consequential Relief) – धारा 34 का परन्तुक यह निर्धारित करता है कि जहाँ वाद की तिथि पर वादी केवल हक की घोषणा से आगे और अनुतोष मांगने के योग्य होते हुए भी वैसा करने में कार्य-लोप करता है, वहाँ न्यायालय ऐसी घोषणा नहीं करेगा। यदि और अनुतोष ही परिणामिक अनुतोष है, वे सीधा अपेक्षित घोषणा से प्रवाहित होता है।

**घोषणा का प्रभाव** – धारा 35 यह लेखबद्ध करती है कि घोषणात्मक डिकी लोकबन्धी नहीं होती, वरन् वह केवल निम्नलिखित पर बन्धनकारी होती है—

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

1. वाद के पक्षों पर,
2. कमशः उनके द्वारा दावा करने वाले व्यक्तियों पर,
3. जहाँ पक्षों में से कोई न्यासधारी हो, वहाँ उन लोगों पर जिनके लिए यदि उनका अस्तित्व घोषणा के दिनांक पर हो, ऐसे पक्ष न्यासधारी हो इस प्रकार, यह अनुसरित होता है कि वह परजानों पर बधनकारी नहीं हो सकती और इस रूप में कोई घोषणा लोकबन्धी निर्णय के रूप से संकिय नहीं होगी।

### निवारणात्मक अनुतोष (Preventive relief)

निवारणात्मक अनुतोष विनिर्दिष्ट अनुतोष का एक ढंग है। जब न्यायालय एक पक्षकार को ऐसा कुछ करने से रोकता है जिसे वह न करने के आभार के आधीन है तो वह निवारणात्मक अनुतोष कहलाता है। निवारणात्मक अनुतोष का उद्देश्य सामान्यतया संविदा के भंग तथा अधिकारों के उल्लंघन को रोकना है। ऐसा अनुतोष व्यादेश के रूप में प्रदान किया जाता है।

**व्यादेश की परिभाषा (Definition of injunction)** – व्यादेश एक आदेश या डिक्री है जिसके द्वारा वाद के किसी पक्षकार को कोई कृत्य करने या न करने के लिए आदेश दिया जाता है।

किसी कृत्य को किये जाने से रोकने के लिए दिये गये व्यादेश निषेधात्मक (prohibitory) या निबन्धक (restrictive) होते हैं, और किसी दोषपूर्ण चूक को वर्जित करने वाले व्यादेश बाध्यकर (mandatory) होते हैं। परन्तु निषेधात्मक या निबन्धक व्यादेश ही अधिक प्रचलित है।

**व्यादेश का वर्गीकरण** – अपनी प्रकृति की दृष्टि से व्यादेशों का विभाजन (1) निषेधात्मक, और (2) आज्ञापक में किया जा सकता है। अपनी संकिया के समय की दृष्टि से व्यादेशों का विभाजन – (1) अन्तःकालीन (अथवा अस्थायी), और (2) शाश्वत (अथवा स्थायी) में किया जा सकता है।

(1) **निषेधात्मक व्यादेश** – निषेधात्मक व्यादेश किसी प्रतिवादी को किसी ऐसे दोषपूर्ण कार्य करने का निषेध करता है जो वादी के किसी वैधिक अथवा साम्यिक अधिकार का अतिक्रमण हो जाएगा।

(2) **आज्ञापक व्यादेश** – आज्ञापक व्यादेश जो कुछ किया जा चुका है उसको मिटा देने का आदेश देकर अथवा वस्तुओं को उनकी पूर्व स्थिति में पुनः स्थापित करने के लिए किसी विशेष कार्य के करने का आदेश देकर प्रतिवादी को वस्तुओं की दोषपूर्ण स्थिति को जारी रहने देन का निषेध करता है।

(3) **अस्थायी व्यादेश (Temporary Injunction)** – अस्थायी व्यादेश ऐसे होते हैं जिन्हें विनिर्दिष्ट समय तक या न्यायालय के अतिरिक्त आदेश तक बने रहना है तथा वे वाद के किसी भी प्रक्रम में अनुदत्त किये जा सकेंगे और दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 द्वारा विनियमित होते हैं। अस्थायी व्यादेश का अनुदत्त किया जाना विवेकाधीन अर्थात् न्यायालय के न्यायिक स्वविवेक (judicial discretion) के अधीन होता है।

(4) **स्थायी व्यादेश (Permanent Injunction)** – स्थायी व्यादेश केवल वाद की सुनवाई के पश्चात और उसके गुण–दोषों के आधार पर अनुदत्त किया जाता है। उसके द्वारा प्रतिवादी को अधिकार का प्रतिपादन करने या ऐसा कार्य करने से, जो वादी के अधिकारों के प्रतिकूल है, चिरस्थायी रूप से मना कर दिया जाता है। स्थायी आदेश का निर्गमन व्यवहार प्रक्रिया संहिता द्वारा विनियमित होता है।

**अस्थायी व्यादेश कब स्वीकृत होते हैं?** – अस्थायी व्यादेश की स्वीकृति निम्नांकित सिद्धांतों से शासित होती है जिसे न्यायालय का विवेकाधिकार का प्रयोग होने के पहले वादी को समाधान करना होता है—

1. वादी को मामले को प्रत्यक्षतः स्थापित करना या दिखाना चाहिए कि यदि व्यादेश नहीं प्रदान किया गया तो उसे परिणामस्वरूप अपूरणीय क्षति होगी। प्रार्थी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने हक को सिद्ध करें, बल्कि उसको केवल दिखाना होता है, कि मामले को यथापूर्व स्थिति में अभिरक्षण किया जाय जब तक कि मामले का निपटारा अन्तिम रूप से नहीं हो जाता।
2. यदि वैध अधिकार विवादियुक्त है जो वादी को यह दिखाने से सक्षम होना चाहिए कि जिस कार्य की शिकायत की गयी है, यथार्थ रूप में अधिकार का अतिक्रमण है अथवा इस कार्य का परिणाम इस प्रकार का अतिक्रमण होगा।
3. प्रार्थी को आगे यह दिखाना चाहिए कि यदि व्यादेश नहीं प्रदान किया गया तो उसकी अपूरणीय क्षति प्रोद्भूत (accrue) होगी तथा उसके लिए कोई उपचार खुला नहीं है जिसके द्वारा आशंकित क्षति के परिणामों से अपने को सुरक्षित किया जा सके।
4. वादी को दो साम्य–वाक्यों से भी समाधान किया जाना चाहिए –
  1. वह जो साम्य की मांग करता है उसे साम्य का कार्य करना चाहिए।
  2. वह जो साम्य में प्रवश करता है उसे निर्दोष प्रवेश करना चाहिए।
5. वादी की ओर से की गई स्वीकृति विलम्ब या सुस्ती उसे अनुतोष पाने से रोक देगी।
6. व्यादेश प्रदान होने से सुविधा का संतुलन होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, वादी को यह दिखाना आवश्यक है कि व्यादेश रोकने के परिणामस्वरूप रिष्टि (Mischief) या असुविधा से अपेक्षाकृत अधिक व्यादेश प्राप्त करने से उत्पन्न रिष्टि या असुविधा होगी।

**चिरस्थायी (शाश्वत) व्यादेश (Perpetual Injunction)** – शाश्वत व्यादेश वाद की सुनवाई पर और उसके गुणावगुण के आधार पर की गयी डिक्री द्वारा ही अनुदत्त किया जा सकता है, तद्द्वारा प्रतिवादी किसी अधिकार का ऐसा प्राख्यान या कोई ऐसा कार्य जहाँ वादी के अधिकारों के प्रतिकूल हो, न करने के लिए शाश्वत काल के लिए व्यादिष्ट कर दिया जाता है।

**चिरस्थायी व्यादेश कब अनुदत्त किया जाता है** – चिरस्थायी व्यादेश पक्षकारों के हकों के अंतिम निर्धारण पर आधारित है और प्रत्येक अतिलंघन (infringement) के लिए एक के बाद एक कार्यवाही किये जाने की आवश्यकता को स्थायी रूप से रोकने के लिए जारी किया जाता है।

इससे पूर्व कि व्यादेश जारी किया जा सके, वादी द्वारा सम्पत्ति के उपभोग या उसके अधिकार पर हमला या सम्भावित हमला होना जरूरी है।

1. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 38 (1) यह निर्धारित करती है कि इस अध्याय में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए स्थायी व्यादेश आवेदक के पक्ष में अभिव्यक्त या विवक्षित रूपेण विद्यमान आभार की भग्नता का निवारण करने के लिए अनुदत्त किया जा सकेगा।

## Class -LL.B (HONS.) I SEM.

## Subject - Law of Contract - I

2. जब प्रतिवादी सम्पत्ति में अथवा उसके उपभोग में वादी के अधिकार पर हस्तक्षेप करें या हस्तक्षेप करने की धमकी दे तो निम्नलिखित दृष्टान्तों में न्यायालय एक शाश्वत व्यादेश प्रदान कर सकता है, अर्थात् –
  - क. जहाँ वादी के लिए प्रतिवादी सम्पत्ति का न्यासधारी हो। (**धारा 38(3)(क)**)
  - ख. जहाँ हस्तक्षेप द्वारा पहुँची या पहुँचने वाली हानि के सुनिश्चयन के लिए किसी स्तर का अस्तत्व न हो।
  - ग. जहाँ हस्तक्षेप ऐसा हो कि आर्थिक प्रतिकर से पर्याप्त अनुतोष न प्राप्त हो।
  - घ. जहाँ न्यायिक कार्यवाही के बाहुल्यता को रोकने के लिए व्यादेश आवश्यक है। न्यायिक कार्यवाही की बाहुल्यता की सम्भावना माँगे गया व्यादेश प्रदान करने के लिए पर्याप्त कारण नहीं है।

### शाश्वत तथा अस्थायी व्यादेश में भेद

1. जबकि एक अस्थायी व्यादेश वाद के प्रारम्भ हो जाने के बाद किसी समय भी प्रदान किया जा सकता है, शाश्वत व्यादेश केवल तभी प्रदान किया जा सकता है जब वादी ने परीक्षण में उसके लिए अपना अधिकार स्थापित कर लिया हो।
2. अस्थायी व्यादेश आदेश के द्वारा पारित किया जाता है जबकि शाश्वत व्यादेश केवल डिकी के द्वारा प्रदान किया जा सकता है।
3. शाश्वत व्यादेश पक्षों के अधिकारों का अन्तिम अवधारण होता है और शिकायती कार्य के करने से प्रतिवादी को सदा के लिए रोक देता है जबकि अस्थायी व्यादेश जब तक वाद लम्बित रहे तभी तक रह सकता है। शाश्वत व्यादेश प्रभावतः एक डिकी है और वह अधिकार को निश्चित कर देता है। वादकालीन व्यादेश अल्पकालीन प्रकृति का उपचार है और किसी अधिकार को निश्चित नहीं करता।
4. अस्थायी व्यादेश का प्रभाव तथा उद्देश्य विवादग्रस्त सम्पत्ति को यथापूर्व स्थिति में सुरक्षित रखना है, जबकि शाश्वत व्यादेश वादी के अधिकार को प्रभाव में लाता है और उसे सुरक्षित रखता है।
5. अस्थायी व्यादेश व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 द्वारा नियमित होते हैं और शाश्वत व्यादेश विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 38, 39, 40 तथा 41 द्वारा ही शासित होते हैं।

इस प्रकार, विनिर्दिष्ट पालन के समान ही जहाँ अभियान द्वारा पहुँचायी गयी अथवा पहुँच सकने वाली वास्तविक हानि के सुनिश्चयन के लिए किसी स्तर का अस्तित्व न हो, या जहाँ अभियान ऐसा हो कि आर्थिक प्रतिकर के द्वारा पर्याप्त साहाय्य प्राप्त न हो सके, या जहाँ अभियान ऐसा हो कि उसके लिए आर्थिक प्रतिकर प्राप्त न हो सकता है, वहाँ न्यायालय एक शाश्वत व्यादेश प्रदान कर देगा। इस प्रकार, हम यह देखते हैं कि, संविदा का प्रवर्तन, विनिर्दिष्ट अनुतोष और व्यादेश, दोनों के द्वारा शासित होता है।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 41 (ड) यह भी उपबन्ध करती है कि ऐसी संविदा के, जिसके पालन का विनिर्दिष्ट प्रवर्तन नहीं किया जावेगा, भंग को रोकने के लिए व्यादेश को प्रदान नहीं किया जा सकता अर्थात् ऐसी संविदा का जिसका सकारात्मक प्रवर्तन विनिर्दिष्ट पालन की डिकी के द्वारा नहीं किया जायेगा, नकारात्मक प्रवर्तन व्यादेश के निर्गम के द्वारा नहीं किया जायेगा।

### आज्ञात्मक व्यादेश (Mandatory injunction)

आज्ञात्मक व्यादेश एक ऐसा व्यादेश है जिसके द्वारा प्रतिवादी को उसके द्वारा उत्पन्न किये गये दोषपूर्ण परिस्थितियों को समाप्त करने या अन्यथा अपने विधिक आभारों की पूर्ति करने के उद्देश्य से उसके द्वारा किसी निश्चित कृत्य को किये जाने की अपेक्षा की जाती है। यह उसे अपकृत्य करने के लिए जिसे किया गया है या चीजों की उसकी पूर्व की स्थिति पर पुनःस्थापित करने के लिए एक समादेश (command) है।

#### आज्ञात्मक व्यादेश की आवश्यकताएँ –

1. आज्ञात्मक व्यादेश अनुदत्त करने का न्यायालय का क्षेत्राधिकार विवेकाधीन है।
2. न्यायालय निम्न तथ्यों पर अत्यंत सावधानी से विचार करेगा –
  - I. सुविधा का संतुलन
  - II. क्षतिपूर्ति धन के रूप में प्रतिकर द्वारा पर्याप्त रूप से हो सकती है या नहीं
  - III. पक्षकारों के आचरण,
  - IV. अधिकारों के अतिक्रमण तथा उल्लंघन की प्रकृति तथा विस्तार।
3. यदि निम्नलिखित पद प्रत्यक्ष हो तो आज्ञापक व्यादेश सामान्यतया प्रदान कर दिया जायगा, अर्थात् –
  - I. कुछ कार्य के करने का प्रतिवादी पर वैधिक दायित्व हो,
  - II. प्रतिवादी के कार्य से वादी के अधिकार में हस्तक्षेप हुआ हो
  - III. वादी द्वारा प्रतिवादी को सूचना दे दी गयी हो और तब भी काम जारी हो,
  - IV. उपर्युक्त (2) के अनुसार न्यायालय यह अवधारण करेगा कि क्या ऐसे व्यादेश का निर्गमित करना आवश्यक है, और
  - V. न्यायालय क्या ऐसे कार्य का प्रवर्तन कर सकता है। इस प्रकार कोई न्यायालय किसी गायक को किसी रंगशाला में गाने के लिए विवश नहीं कर सकता, क्योंकि गाना उसके व्यक्तिगत प्रयास पर निर्भर ह।
4. आज्ञापक व्यादेश नहीं निर्गमित किया जायगा–
  - I. जहाँ हानिपूर्ति द्वारा क्षति का न्यायोचित प्रतिकर हो सकता हो,
  - II. जहाँ सुविधा का संतुलन प्रतिवादी के पक्ष में हो,
  - III. जहाँ अभिकरित बाधा अस्थायी प्रकृति की हो,
  - IV. जहाँ वादी न्यायालय की शरण में जाने से पूर्व रुका रहे और बाधा को पूर्ण हो जाने दे।

आज्ञात्मक व्यादेश का उद्देश्य प्रतिवादी को कुछ सकारात्मक कार्य करने के लिए विवश करना है।

1. धारा 38 के अधीन शाश्वत व्यादेश के या धारा 39 के अधीन आज्ञापक व्यादेशों के वाद में वादी ऐसे व्यादेश के अतिरिक्त या स्थान पर नुकसानी का दावा कर सकेगा और न्यायालय यदि ठीक समझे तो ऐसी नुकसानी दिला सकेगा।

**Class -LL.B (HONS.) I SEM.**

**Subject - Law of Contract - I**

2. इस धारा के अधीन नुकसानी का कोई अनुतोष तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि वादी ने अपने वादपत्र में ऐसे अनुतोष का दावा न किया हो।

परन्तु जहाँ कि वादपत्र में ऐसी किसी भी नुकसानी का दावा न किया गया हो वहाँ न्यायालय कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम में इसलिए कि वादी ऐसे दावे को वादपत्र में अत्तर्गत कर सके, वादपत्र का संशोधन करने के लिए ऐसे निबन्धनों पर अनुज्ञा देगा जैसे न्यायासंगत हों।

**व्यादेश प्रदान न किये जाने वाले मामले –** विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम कुछ ऐसी परिस्थितियों का उल्लेख करता है जिनमें व्यादेश प्रदान नहीं किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 41 के अनुसार “व्यादेश प्रदान नहीं किया जा सकता, जब-

- (1) ऐसे वाद के दायर किये जाने के समय, जिसमें व्यादेश चाहा जाता हो, लम्बित न्यायिक कार्यवाही चलाने से किसी व्यक्ति का निग्रहण करने के लिए जब तक कि ऐसा निग्रहण कार्यवाहियों के बाहुल्य को रोकने के लिए आवश्यक न हो।
- (2) ऐसे न्यायालय में, जो उस न्यायालय के जिससे व्यादेश चाहा जाता है, अधीनसी न हो, किसी व्यक्ति का किसी कार्यवाही के आरम्भ करने या चलाने से रोकने के लिए।
- (3) किसी विधायी कार्य में आवेदन प्रस्तुत करने से लोगों को रोकने के लिए,
- (4) किसी व्यक्ति को, किसी आपराधिक मामलों में कोई कार्यवाही संस्थित करने या चलाने से अवरोधित करने के लिए,
- (5) ऐसी संविदा वी भग्नता निवारित करने के लिए जिसका विनिर्दिष्ट पालन नहीं कराया जा सकता,
- (6) अपदूषण के आधार पर किसी ऐसे कार्य का निवारण कराने के लिए जिसके संबंध में यह युक्तियुक्त रूप से स्पष्ट नहीं है कि वह अपदूषण होगा।
- (7) किसी सतत भंग को रोकने के लिए, जिसके प्रति आवेदक उपमत हो चुका है।
- (8) न्यास-भंग के मामले में सिवाय जबकि समतुल्य प्रभावकारी अनुतोष अन्य प्रायिक ढंग की कार्यवाही द्वारा निश्चित रूप से अभिप्राप्त किया जा सकता है।
- (9) जबकि वादी या उसके अभिकर्ता का आचरण ऐसा रहा हो कि, न्यायालय की मदद पाने के लिए वह हकदार नहीं रहा है। जो साम्य की अपेक्षा करता है उसे भी साम्य करना चाहिए। व्यादेश प्राप्त करने की माँग करने वाले वादी के कृत्य तथा व्यवहार बिना धोखे के तथा कपट या अवैधता रहित होना चाहिए।
- (10) जहाँ कि वादी का मामले में कोई व्यक्तिगत हित नहीं है।”